RNI No.: 50199/88

I.S.S.N. 0971 - 9024

वर्ष - 23, अंक - 4, अक्टूबर-दिसम्बर 2011

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - केवल आम की नहीं आगम की भी चिन्ता जरूरी, 03

□ अनुपम जैन, इन्दौर

लेख / Articles

मनोविज्ञान में समसामयिक प्रवृत्तियाँ एवं आत्म विज्ञान की जैन पद्धतियाँ, 09

□ प्रभुनारायण मिश्र एवं पूजा जैन, इन्दौर

जैन आगमिक व्याख्या साहित्य का कालक्रम में विकास, 15

□ वंदना मेहता, लाडनूँ

शब्द 27

□ प्रभात कुमार जैन, गाजियाबाद

तत्वार्थसूत्र एवं उसकी टीकाओं में निहित गणित, 37

□ अनुपम जैन एवं संजय जैन, इन्दौर

Mind Reading through Mind Mapping in Jainism, 45

□ Samani Chaitya Pragya, Ladnun

Jain Dualism-2 : Fields and Interactions 51

□ Narayan Lal Kachhara, Udaipur

Dynamisation of Water, 67

□ Jeoraj Jain, Jamshedpur

टिप्पणी / Short Notes

श्रुतावतार का यथार्थ, 75

□ भागचन्द्र जैन 'भास्कर' नागपुर

जैन ज्योतिष की मौलिकता 77

□ आचार्य अशोक सहजानन्द, दिल्ली

मुडवारा तहसील जिला कटनी की जैन प्रतिमायें 81

□ नरेशकुमार पाठक, पन्ना

Acharya Gyan Sagar : A Great Poet 83

□ Subhash Jain, Sagar

साक्षात्कार – श्री अनिल चौहान, इंदौर 85

गतिविधियाँ 87

मत-अभिमत 99

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर स्थापना रजत जयन्ती वर्ष
19.10.2011 से 18.10.2012

Sugan / 0930 212 55 94

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

वर्ष-23, अंक 4
Vol.-23, Issue 4

अक्टूबर-दिसम्बर 2011
October-December 2011

चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) में लगभग 14वीं.श.ई. में बनाये गये 101 फीट ऊँचे कीर्ति स्तम्भ की इंदौर के हृदय स्थल रीगल चौराहे के समीप महावीर ट्रस्ट द्वारा बनवाई गई 42 फीट ऊँची प्रतिकृति।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪṬHA, INDORE

I.S.S.N. - 0971 - 9024 R.N.I. No. 50199/88

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE

(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 23, अंक 04 **अक्टूबर-दिसम्बर 2011**

Volume 23, Issue 04 **October-December 2011**

मानद – सम्पादक

डॉ. अनुपम जैन

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष-गणित,
शासकीय होलकर (स्वशासी) विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर – 452 001 भारत
☎ 0731 – 2797790, 2545421

HONY. EDITOR

Dr. Anupam Jain

Professor & Head-Department of Mathematics,
Govt. Holkar (Autonomous) Science College,
INDORE - 452 001 INDIA
email : anupamjain3@rediffmail.com

❖ ❖ ❖

प्रकाशक

डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ

584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र)

PUBLISHER

Dr. Ajitkumarsingh Kasliwal
President
KundaKunda Jñānapīṭha

584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 2545744, 2545421 (O) 2434718, 09302104700

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से अध्यक्ष- डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स**, LG - 11, ट्रेड सेन्टर, साऊथ तुकोगंज, इन्दौर से मुद्रित फोन : 4065518 **सम्पादक : डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर**

अर्हत् वचन सम्पादक मंडल / Arhat Vacana Editorial Board, 2010 & 2011

श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन (अध्यक्ष)
सेवानिवृत्त प्राचार्य,
104, नई बस्ती,
फिरोजाबाद – 283 203

Shri Narendra Prakash Jain (President)
Retired Principal,
104, Nai Basti,
Firozabad - 283 203

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक – गणित एवं प्राचार्य,
554, सराफा, दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर,
जबलपुर – 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor of Mathematics & Principal,
554, Sarafa, Upstairs Diksha Jewellers,
Jabalpur - 482 002

प्रो. राधाचरण गुप्त
सेवानिवृत्त प्राध्यापक – गणित,
आर-20, रसबहार कॉलोनी, लहरगिर्द,
झांसी – 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Retired Professor of Mathematics,
R-20, Rasbahar Colony, Lahargird
Jhansi - 284 003

डॉ. तकाओ हायाशी
प्राध्यापक - विज्ञान इतिहास,
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो – 610 – 03 **जापान**

Dr. Takao Hayashi
Professor - History of Science,
Science & Tech. Res. Institute,
Doshisha University,
Kyoto - 610-03 Japan

प्रो. जगदीश चन्द्र उपाध्याय
प्राध्यापक – इतिहास,
172, रेडियो कॉलोनी,
इन्दौर – 452 001

Prof. Jagdish Chandra Upadhyay
Professor of History,
172, Radio Colony,
Indore - 452 001

श्री सूरजमल बोबरा
निदेशक – ज्ञानोदय फाउन्डेशन,
9/2, स्नेहलतागंज,
इन्दौर – 452 003

Shri Surajmal Bobra
Director - Jñānodaya Foundation,
9/2, Sneh Lataganj,
Indore - 452 003

श्री जयसेन जैन
सम्पादक - सन्मति वाणी,
201, अमित अपार्टमेन्ट, 1/1 पारसी मोहल्ला,
इन्दौर – 452 001

Shri Jaisen Jain
Editor - Sanmativāṇī,
201, Amit Apartment, 1/1 Parasi Mohalla,
Indore - 452 001

डॉ. अनीता जैन
प्राचार्य - श्री जैन दिवाकर महाविद्यालय
ओल्ड पलासिया
इन्दौर – 452 001

Dr. Anita Jain
Principal - Shri Jain Diwakar College,
Old Palasia
Indore - 452 001

प्रो. जे.एस. कुशवाह
विभागाध्यक्ष - अंग्रेजी
299, गोयल नगर (पूर्व)
इन्दौर – 452 019

Prof. J.S. Kushwah
H.O.D. - English
299, Goyal Nagar (East)
Indore - 452 019

- सम्पादकीय पत्राचार का पता -

डॉ. अनुपम जैन
'ज्ञान छाया' डी – 14, सुदामा नगर,
इन्दौर – 452 009
फोन : 0731 – 2797790

Dr. Anupam Jain
'Gyan Chhaya' D - 14, Sudama Nagar,
Indore - 452 009
Ph. : 0731 - 2797790

email : anupamjain3@rediffmail.com, 094250-53822

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें। साथ ही सम्बद्ध अंक की एक प्रति भी हमें प्रेषित करें। समस्त विवादों का निपटारा इन्दौर न्यायालयीन क्षेत्र में ही होगा।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

केवल आम की ही नहीं आगम की भी चिन्ता जरूरी

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के रजत जयन्ती वर्ष के शुभारम्भ (19.10.2011) की पूर्व संध्या में प्रकाशित अर्हत्वचन के इस 92वें अंक में हम अपने प्रेरणा स्रोत आदरणीय **काका साहब श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल जी** को कृतज्ञता पूर्वक स्मरण कर रहे हैं। वे प्रकाशकीय अनुरोध शीर्षक से अर्हत्वचन में प्रायः लिखते रहते थे और इस प्रकार उनके मनोगत अनेक भावों की अभिव्यक्ति हो जाती थी।

1987 में अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक एवं आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में आयोजित जैन विद्या राष्ट्रीय संगोष्ठी (18-19 अक्टूबर 1987) के अवसर पर आपने अपनी भावना व्यक्त की **'हम दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट शैक्षणिक/अकादमिक गतिविधि प्रारम्भ करना चाहते हैं।'** इस भावना एवं आचार्य कुन्दकुन्द द्वि-सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष का निमित्त पाकर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की स्थापना **19.10.87** को हुई।

ज्ञानपीठ की घोषणा तो हो गई किन्तु जब प्राथमिकतायें, रीति-नीति, कार्यशैली, लक्ष्य तय करने की बारी आई तो गम्भीर अध्ययन, स्पष्ट चिन्तन एवं दीर्घ दृष्टि सम्पन्न काका सा. ने जो मार्गदर्शन दिया वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है–

1. पूर्ववर्ती 23 तीर्थंकरों की बात तो दूर की है वर्तमान शासन नायक भगवान महावीर की भौतिक उपस्थिति सिद्ध करने वाला एक भी शिलालेखीय प्रमाण, पुरातात्विक साक्ष्य हमारे पास उपलब्ध नहीं है। हमें इस पर कार्य करना चाहिये।

2. देश भर में विराजित लाखों जिन मूर्तियों की प्रशस्तियाँ एवं पांडुलिपियाँ इतिहास की महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक स्रोत हैं। नये तथ्य यहाँ से ही मिलते हैं किन्तु न तो मूर्तियों की गणना है और न पांडुलिपियों की। हमें अपने मन्दिरों/चैत्यालयों/शास्त्रभंडारों तथा उनमें विराजित मूर्तियों/पांडुलिपियों का विस्तृत लेखा-जोखा तैयार करना चाहिये। जंगलों, खण्डहरों में पड़ी मूर्तियों, शिलालेखों तथा असुरक्षित स्थानों पर रखी पांडुलिपियों का संरक्षण तत्काल जरूरी है।

3. 'जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है' यह कहते सभी है किन्तु जैनागमों का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने एवं उनमें निहित वैज्ञानिक सामग्री का संकलन करने तथा वैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाले जैन विद्या के अध्येताओं द्वारा संकलित सामग्री का विश्लेषण कराने वाला देश में एक भी केन्द्र नहीं है। हमें इस ओर पहल करनी चाहिये।

उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में एक सुविचारित योजना के अधीन कार्य शुरू किया गया।

काका सा. की एक विशेषता थी कि वे व्यापक विचार-विमर्श के उपरान्त कोई कार्य हस्तगत करते थे एवं एक बार हस्तगत कर लेने के बाद उसकी सफलता हेतु हर संभव प्रयास करते थे। न लक्ष्य से हटते थे एवं न उसकी उपेक्षा करते थे। उन्होंने अपना लक्ष्य कभी नहीं बदला। चरणबद्ध तरीके से किये कुछ कार्य निम्नवत हैं–

1988 - सित. 88 में तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के करकमलों से अर्हत्वचन शोध त्रैमासिकी के प्रवेशांक का फिक्की सभागार–दिल्ली में विमोचन।
अद्यतन 92 अंक प्रकाशित, शताधिक पत्रिकाएं प्रत्यावर्तन में सतत् प्राप्त।

1989 - बहरीन वि. वि. के गणित के प्राध्यापक प्रो. श्रीधर बाजपेयी (वर्तमान स्वामी श्रीधरानन्द) के व्याख्यान से कुन्दकुन्द व्याख्यानमाला का प्रारंभ।
अब तक 18 व्याख्यान सम्पन्न।

1990 - अर्हत् वचन में एक वर्ष में प्रकाशित 3 सर्वश्रेष्ठ आलेखों के लेखकों को अर्हत् वचन पुरस्कार से सम्मानित करना।

प्रथम पुरस्कार	-	5000/-
द्वितीय पुरस्कार	-	3000/-
तृतीय पुरस्कार	-	2000/-

योजना अद्यतन गतिमान है।
जापान से गणित के प्राध्यापक प्रो. योशिमाशा मिचिवाकी एवं कु. मुत्सुको मिचिवाकी का 09.01.90 को आगमन

1991 - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय का 24.03.91 को शुभारम्भ।
काका सा. द्वारा व्यक्तिगत संग्रह से प्रदत्त 65 पुस्तकों से प्रारम्भ इस पुस्तकालय में आज 32000 से अधिक पुस्तकें, 731 पांडुलिपियां एवं सहस्राधिक पत्रिकायें संग्रहीत हैं।

1992 - विद्वानों को पारस्परिक विचार विमर्श का मंच देने हेतु जैन विद्या संगोष्ठी की श्रृंखला प्रारम्भ। ज्ञानपीठ द्वारा प्रथम संगोष्ठी 12-13 जनवरी - 92 को।
अब तक 16 जैन विद्या संगोष्ठियों एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन।

1993 - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार की स्थापना एवं समर्पण।
पुरस्कार राशि - रुपए 25000/-, प्रथम पुरस्कार से सम्मानित स्व. पं. नाथूलाल जैन शास्त्री अपनी कृति प्रतिष्ठा प्रदीय हेतु सम्मानित।
योजना वर्तमान में भी प्रचलित। अद्यतन 17 विद्वान सम्मानित।
जैन विद्याओं के शोध एवं उन्नयन हेतु 2 मई 1993 को तत्कालीन कुलपति प्रो. उमरावसिंह चौधरी की अध्यक्षता में बैठक। इस बैठक के बाद से शोध कार्यों को गति देना प्रारम्भ।
अब तक इस केन्द्र के माध्यम से 01 D. Litt., 30 Ph.D. तथा 34 MPhil. / M.A. / M.Sc. शोध प्रबन्ध तैयार किये जा चुके हैं।

1994 - 5-6 सितम्बर 1994 को गोपाचल कार्यशाला का आयोजन कर डॉ. टी.व्ही.जी. शास्त्री (हैदराबाद) के निर्देशन में गोपाचल पर्वत (ग्वालियर) पर विकीर्ण पुरासम्पदा के अभिलेखीकरण (Documentation) कार्य के विश्लेषण, मूल्यांकन, विस्तृत सर्वेक्षण तथा आख्या का सम्पादन कार्य प्रारम्भ। फलश्रुति में 1997 में The Jain Sanctuaries of Fortress of Gwalior का प्रकाशन।

1995 - 22.02.95 को देवी अहिल्या वि.वि. के तत्कालीन कुलपति प्रो. ए.ए. अब्बासी द्वारा ज्ञानपीठ को शोध केन्द्र की मान्यता प्रदान करने की घोषणा।
मान्यता एवं शोध कार्य सतत जारी।
4-17 दिसम्बर 95 तक प्राकृत विद्या शिक्षण प्रशिक्षण शिविर का सफल आयोजन।

1996 - क्षु. जिनेन्द्र वर्णी स्मृति व्याख्यानमाला का 17-05-96 को शुभारम्भ, अब तक 07 व्याख्यान आयोजित। क्रम जारी।
गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में 11-12 मार्च 1996 को शुभागमन, अद्यतन अनेकों प्रमुख संतों का शुभागमन।

1997 - जैन विद्या संगोष्ठी का 28-29 जून 1997 को आयोजन, डॉ. उदयचंद जैन एवं आचार्य गोपीलाल अमर पुरस्कृत। The Jain Sanctuaries of Fortress of Gwalior का प्रकाशन।

1998 - श्री सूरजमल बोबरा के सौजन्य से जैन इतिहास के क्षेत्र में श्रेष्ठ शोधकार्य हेतु ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना। पुरस्कार राशि 11000/- एवं शाल, श्रीफल तथा प्रशस्ति अब तक 9 विद्वान पुरस्कृत।
19.12.98 को 8 कुलपतियों का एक साथ कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में शुभागमन।

1999 - श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के साथ मिलकर प्रकाशित जैन साहित्य एवं अप्रकाशित जैन ग्रंथों के सूचीकरण की महत्वाकांक्षी योजना का शुभारम्भ।
संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का विशाल संघ सहित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में शुभागमन।

2000 - 28-29 मार्च 2000 को भगवान ऋषभदेव संगोष्ठी का आयोजन, श्री नरेश पाठक द्वारा सृजित 'मध्यप्रदेश का जैन शिल्प' शीर्षक कृति का प्रकाशन।

2001 - ज्ञानपीठ में सिरि भूवलय परियोजना प्रारम्भ। समानान्तर रूप से प्रकाशित जैन साहित्य तथा जैन पांडुलिपियों के सूचीकरण का कार्य भी प्रगति पर।

2002 - इस शोध केन्द्र से प्रो. पुरुषोत्तम दुबे के निर्देशन में पंजीयत होकर शोधकार्य करने वाली डॉ. अनुपमा छाजेड को **'जैन रामायणों में राम का स्वरूप'** विषय पर Ph.D. उपाधि प्राप्त।

2003 - **राष्ट्रीय अभिलेखागार - संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर को म.प्र. एवं महाराष्ट्र हेतु नोडल एजेन्सी मनोनीत किया गया।**

2004 - International Conference on History and Heritage of Mathematical Sciences (ICHHMS- 2004) का प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन शास. होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर एवं भारतीय गणित इतिहास परिषद, नई दिल्ली के साथ मिलकर किया। 25 विदेशी तथा 150 से अधिक भारतीय विद्वान सम्मिलित।
तेरापंथ जैन धर्म संघ के **आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी** का जैन विद्या संगोष्ठी 31.03.2004 से 1.04.2004 में सान्निध्य।

2005 - राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन, नई दिल्ली द्वारा **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर को MRC** मनोनीत किया गया।
15-26 जुलाई के मध्य International Summer School for Jaina Studies सफल आयोजन, 8 विदेशी विद्वान सम्मिलित।

2006 - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ शोध केन्द्र पर डॉ. मनीषा जैन, इन्दौर की अर्थशास्त्र विषय में प्रथम Ph.D. मौखिक परीक्षा
इस केन्द्र से पंजीयत अनेक शोधार्थियों का कार्य प्रगति पर।
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अन्तर्गत परीक्षा संस्थान के माध्यम से **ज्योतिष रत्न** पाठ्यक्रम प्रारम्भ।

2007 - **आचार्य श्री विशुद्ध सागरजी महाराज के पावन सान्निध्य में तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री लक्ष्मणसिंह गौड़ द्वारा संस्कृति बोध कला वीथिका शुभारम्भ।**
14 जनवरी को राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन के तत्वावधान में तत्त्वबोध व्याख्यान का आयोजन।
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर पुस्तकालय को Young Librarian Association द्वारा Best Library of M.P. का अवार्ड।
श्वेताम्बर जैन मूर्ति पूजक संघ के वरिष्ठ **आचार्य श्री पद्मसागरसूरि जी** का ज्ञानपीठ में 03.12.07 को शुभागमन।

2008 - 17-19 अक्टूबर के मध्य जैन विद्या संगोष्ठी का वृहद् आयोजन। **राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी का ज्ञानपीठ** में शुभागमन।

2009 - तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्रीमती अर्चना चिटनीस की उपस्थिति में 2001 से ज्ञानपीठ के मानद निदेशक प्रो. ए.ए. अब्बासी का विशेष सम्मान।

2010 - 'जैन धर्म एवं सामाजिक सरोकार' विषय पर एक 28.07.10 को राष्ट्रीय सेमिनार ISJS के संयुक्त तत्वावधान में। राष्ट्रसंत पूज्य मुनिश्री पुलकसागरजी का ज्ञानपीठ में शुभागमन। फ्लोरिडा अंतर्राष्ट्रीय वि.वि. फ्लोरिडा में स्थापित प्रथम भगवान महावीर प्रोफेसरशिप से सम्मानित प्रो. नेथन केट्ज का जैन विद्या संगोष्ठी दिसम्बर 2010 में मुख्य अतिथि के रूप में उद्बोधन।
राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन द्वारा MCC (पांडुलिपि संरक्षण केन्द्र) से मनोनीत
देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर के वर्तमान कुलपति प्रो. पी.के. मिश्रा द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से FIU के साथ पारस्परिक आदान-प्रदान के कार्यक्रमों की शुरुआत के संकेत।

2011 - 'पांडुलिपियों का सुरक्षात्मक संरक्षण एवं जनजागरण कार्यशाला' 7-11 मार्च 2011
'भारत में गणितीय पांडुलिपियां' राष्ट्रीय सेमिनार 26-28 मार्च 2011
फ्लोरिडा अंतर्राष्ट्रीय वि.वि. मियामी के डॉ. बिटनी बउमान द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ व्याख्यान।
राष्ट्रीय पाडुलिपि मिशन के तहत 45000 पांडुलिपियों का सूचीकरण।

25 वर्षों की विकास यात्रा की यह झलक ज्ञानपीठ की प्रगति की कहानी कहने में सक्षम है। जहां इसमें सातत्य है वहीं विविधता भी है। प्रतिवर्ष कुछ न कुछ जुड़ते-जुड़ते यह आज इतनी विस्तृत हो गई है कि यह जैन विद्याओं के अध्ययन / अनुसंधान का राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जीवन्त केन्द्र बन गया है एवं अनेक विद्वानों का यह अभिमत है कि जैन धर्म / दर्शन की किसी भी विधा पर किया गया शोधकार्य इस केन्द्र के अवलोकन बिना अधूरा ही है। जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान के क्षेत्र में इस संस्था के योगदान पर M.Phil/M.A. लघुशोध प्रबन्ध भी देवी अहिल्या वि.वि. को प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

32000 पुस्तकों, 1850 पांडुलिपियों, सहस्राधिक शोध पत्रिकाओं को समेटे विशाल सन्दर्भ ग्रंथालय, 92 अंकों के पड़ाव तक पहुंच चुकी अर्हत् वचन की प्रकाशन श्रंखला, संस्था के 40 इतर प्रकाशन, 17 राष्ट्रीय जैन विद्या संगोष्ठियाँ, 01 अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, 01 समर स्कूल, 30 से अधिक व्याख्यान, 01 प्राकृत शिक्षण शिविर, 01 राष्ट्रीय सेमिनार, 02 वर्कशाप के आयोजन प्रकाशित जैन साहित्य एवं जैन शास्त्र भंडारों में संग्रहीत लक्षाधिक पांडुलिपियों के विश्लेषित आंकड़ों, 7 हजार पांडुलिपियों की स्केन्ड इमेजेस (D.V.D.S.) का संकलन, संस्कृति बोध कला वीथिका की अभिनव सोच एवं उसको साकार रूप देने हेतु बढ़ते कदम। इन सबको मिलाकर इसका स्वरूप इतना विशाल एवं विविधता पूर्ण हो गया है कि अब हमें इसके मूलाधार आधारभूत सुविधाओं एवं मानवीय संसाधनों के सुदृढ़ीकरण पर जोर देना होगा। उपर्युक्त उपलब्धियों के साथ निरन्तरता के कारण संस्था की साख बढ़ी है। फलतः देश की कई अन्य संस्थाएं, मार्गदर्शन सहयोग हेतु ज्ञानपीठ की ओर आशा भरी दृष्टि से देखती हैं। सामाजिक दायित्व के तहत हमें उनको भी सहयोग देना होगा। इससे उन्हें तो लाभ होगा ही संस्था का भी यश बढ़ेगा। IGNOU के जैन स्टडी सेन्टर तथा देवी अहिल्या वि.वि. इन्दौर में स्वायत्त जैन अध्ययन संस्थान अथवा जैन चेयर की स्थापना में सहयोग आगामी योजनाओं में शरीक है। यदि मानवीय संसाधनों की गुणवत्ता एवं कार्यों का विकेन्द्रीकरण नहीं हुआ तो इस विकासमान श्रृंखला को बनाये रखना कठिन होगा। कहने को तो इन्दौर नगर में 5 और जैन विद्या के शोध संस्थान हैं किन्तु कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ काका सा. देवकुमार सिंह कासलीवाल के सपनों का शोध संस्थान है। अन्य शोध संस्थानों को देश या प्रदेश क्या पड़ोसी भी नहीं जानता। लोगों ने बड़े विश्वास से अपने दुर्लभ ग्रंथ, पांडुलिपियां हमें सहेजने को सौंपी है। उनको नमी, दीपक, फंगस, कीटों एवं अन्य क्षति पहुचाने वाले कारकों से बचाना हमारा परम कर्तव्य है।

पूजन, मण्डल विधान करने/कराने एवं अनुमोदना करने वाले को असीम पुण्यबंध तत्काल होता है। भक्ति करने वाले आमजन के चेहरे पर संतुष्टि का भाव देखकर स्वयं के मन को भी शांति

मिलती है। साधर्मी वात्सल्य भोज एवं रोगी जनों को औषधालय या अन्य माध्यमों से औषधि देने से उपकृत व्यक्ति तत्काल या 2-4 दिनों में ही कृतज्ञता को व्यक्त करते हैं। इससे भी मन को शांति मिलती है। स्वास्थ्य परीक्षण या निदान शिविर, नेत्र परीक्षण एवं चश्मा वितरण के कार्य कोई भी श्रेष्ठी धन व्यय कर आयोजित कर सकता है। इस हेतु भावना एवं धन जरूरी है एवं ऐसे कार्य किए भी जाने चाहिये क्योंकि इससे हमारे देश के उपेक्षित आम आदमी को लाभ पहुंचता है। किन्तु आगम की रक्षा, तीर्थों की रक्षा, इतिहास की सुरक्षा उसके अध्ययन का काम भी किसी न किसी को तो करना ही होगा। क्योंकि इनके आधार पर ही हम

1. सम्मेद शिखर, गिरनारजी, केशरिया जी एवं अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की रक्षा कर पायेंगे।

2. इनके माध्यम से ही हम अपनी मूल पहचान, अस्तित्व एवं संस्कृति को बचा पाएंगे।

3. अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकान्त जैसे सिद्धान्तों को बताने वाले शास्त्र एवं उनके पढ़ने समझाने वालों को भी बचाना होगा हमारे प्रमाद एवं इस क्षेत्र में उपेक्षा के करण ही आज—

अ) हम गंधहस्तिभाष्य को नहीं ढूंढ पा रहे है।

ब) सम्मेद शिखरजी में पार्श्वनाथ टोंक पर विराजमान मूर्ति के चित्र एवं वहां मूर्ति की पूजा होने के प्रमाण को नहीं ढूंढ पा रहे है।

स) आचार्य कुन्दकुन्द, यतिवृषभ, वीरसेन एवं अन्य आचार्यों द्वारा प्रणीत दर्जनों ग्रंथों से वंचित है।

द) हमारे कई तीर्थ आज लुप्त हो गये है। जो ज्ञात है उनमें विधर्मियों द्वारा झगड़े खड़े किये जा रहे हैं। हमें प्रमाण ढूढने में तकलीफ आ रही है।

आगे अधिक नुकसान न हो इसके लिए नामधारी शोध संस्थानों की अपेक्षा वास्तविक शोध संस्थानों को चलाना होगा। शोध संस्थान के नाम पर दुकान चलाने वाले तथाकथित महानुभावों से हमें बचना होगा। **कोई कितना भी धन क्यों न खर्च कर दे रातोंरात शोध संस्थान नहीं खड़ा किया जा सकता। यह एक प्रक्रिया के तहत बनते है। जिसमें समय, श्रम, धन, धैर्य सब लगता है। और इस सबसे ज्यादा दूरदृष्टि एवं समर्पण।** शरीरशिथिल होने से पूर्व तक काका सा. प्रतिदिन ज्ञानपीठ आते थे व्यापारिक कार्यों को देखने हेतु हवेली (कार्यालय) जाने से पहले ज्ञानपीठ आते थे यह थी प्राथमिकता। इनको चलाने में बहुत समस्याएं आती है, जिनकी चर्चा अर्हत् वचन 13(1) एवं 13 (2) वर्ष 2001 में हमने की है। प्राथमिकता को स्पष्ट रखना, लक्ष्य को स्थिर रखना, अनुभव का सम्मान करना, कार्यों का समीचीन विभाजन करना एवं गतिशील रहना ही सफलता की कुंजी है।

रजत जयंती वर्ष में नवीन लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने की मंगल कामनाए।

प्रस्तुत अंक 23 (4) अक्टूबर-दिसम्बर 11, समयावधि में प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता है। वस्तुतः यह हमारे माननीय सम्पादक मण्डल (2010 एवं 2011), प्रबुद्ध लेखकों के सहयोग से संभव हो सका है। सभी के प्रति आभार।

- डॉ. अनुपम जैन

वर्ष - 23, अंक - 4, अक्टूबर-दिसम्बर - 2011, 9-14

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

मनोविज्ञान में समसामयिक प्रवृत्तियाँ एवं आत्म विकास की जैन पद्धत्तियाँ

■ प्रभुनारायण मिश्र एवं पूजा जैन **

सारांश

भारतीय परम्परा में मनोविज्ञान दर्शन का ही एक भाग था। दर्शन शास्त्र के अंतर्गत ही चेतना के विकास की विविध रीतियों की चर्चा होती थी। शनैः शनैः इस विषय की विविध प्रायोगिक रीतियों को विकसित कर पश्चिम के चिन्तकों ने इसे एक स्वतंत्र विषय की मान्यता दी। गत शताब्दियों में इस विषय के आधारभूत सिद्धांतों में अनेक बार परिवर्तन हुए एवं वर्तमान में भी यह विषय निरन्तर परिवर्तन शील होकर विकसित हो रहा है। व्यावहारिक मनोविज्ञान के सिद्धांत जानवरों, पागल मनुष्यों पर किये गये परीक्षणों अथवा एक विशिष्ट विचारधारा के व्यक्ति द्वारा संकलित आकड़ों एवं सांख्यिकीय विश्लेषणों पर आधारित होते हैं जो विश्लेषण विधियों को बदलने पर बदल जाते हैं। जबकि भारतीय मनीषा द्वारा अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर स्व पर किये गये परीक्षणों के निष्कर्षों को जैन, बौद्ध ग्रंथों एवं गीता में संकलित किया है।

आत्मिक विकास की तीन रीतियां जैन दर्शन में वर्णित है।

1. सामायिक 2. कायोत्सर्ग 3. ध्यान

इनका ही विवेचन प्रस्तुत आलेख में किया गया है।

इस आलेख में जिन प्रश्नों के हम उत्तर खोजना चाहेंगे, वे हैं, मनोविज्ञान की मानव जीनव में उपयोगिता क्या है? उसका दर्शनशास्त्र से क्या संबंध है? भारत का मनोविज्ञान और दर्शनशास्त्र किस तरह पश्चिम के मनोविज्ञान से भिन्न हो जाता है? जहाँ तक भारतीय परंपरा का प्रश्न है हमारे यहाँ मनोविज्ञान जैसे स्वतंत्र विषय का अस्तित्व नहीं था, मूल विषय दर्शन था, जिसका प्रयोजन था मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य को स्पष्ट कर देना। उद्देश्य स्पष्ट हो जाने मात्र से उसकी प्राप्ति नहीं हो जाती है। उसके लिए कोई चरण दर चरण प्रक्रिया होनी चाहिए। उस प्रक्रिया का नाम योग है, साधना है। इस तरह भारतीय परंपरा में दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान को पृथक्-पृथक् नहीं देखा गया है, एक साथ पाए जाते थे। इस देश में भी जब मनोविज्ञान की पढाई सर्वप्रथम कलकत्ता विश्वविद्यालय में शुरू की गयी तो मनोविज्ञान का कोई पृथक् विभाग नहीं था, इसे दर्शनशास्त्र के विभाग के अंतर्गत स्थान दिया गया था। धीरे-धीरे बहुत आयामों वाले एक स्वतंत्र विषय के रूप में मनोविज्ञान विकसित होता गया। चूँकि इस देश की दार्शनिक परंपरा और उससे जुडी हुई यौगिक परंपरा हजारों साल पुरानी है इसलिए उसके इतिहास को रेखांकित करना संभव नहीं है। दार्शनिकता हर भारतीय के जीवन में इस प्रकार रच बस गई है कि लगता ही नहीं कि यह उसके जीवन का अभिन्न अंग न हो।

जहॉ तक पश्चिम के मनोविज्ञान का प्रश्न है, बहुत खींचतान के बाद इसके इतिहास को प्लेटो (427-347 बी.सी.) से आरंभ माना जा सकता है, जिसने व्यक्तिगत भिन्नताएँ,उत्प्रेरण, स्मृति,

* प्राध्यापक-प्रबन्ध विज्ञान,P-2 देवी अहिल्या वि. वि. आवासीय परिसर,खंडवा रोड, इन्दौर - 452001
** व्याख्याता-अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक अध्ययन संस्थान, देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर - 452001

व्यक्तित्व,मानसिक स्वास्थ्य आदि पर कुछ बातें कहीं है। यथार्थ रूप में जिसे आज मनोविज्ञान के नाम से जाना जाता है उसकी शुरूआत 19 वीं शताब्दी के मध्य से माना जाना उचित होगा। 1862 में विल्हेल्म वुण्ट (1832-1920) ने केन्द्रीय अनुभूतियों पर अपनी मनोविज्ञान की पुस्तक का प्रकाशन किया। अर्थात् आधुनिक मनोविज्ञान 150-160 वर्षों से (आज की तारीख में),अधिक पुराना नहीं। इसके विपरीत हमारी दार्शनिक और मनोविज्ञान परंपरा प्राचीन है। डॉ. विल्हेल्म वुण्ट ने सन् 1979 में लेप्जिग (Leipzig) विश्वविद्यालय में अपनी प्रयोगशाला स्थापित की । प्रारंभिक अवस्था में उसने आत्ममंथन की पद्धति में अपने विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया। Wundt के मनोविज्ञान में चेतना को समझने के लिए उसके अवयवों को रेखांकित करने पर जोर दिया गया। उनका मानना था कि चेतना के विविध घटक होते हैं तथा उसे उसके अवयवों के माध्यम से समझा जा सकता है। विल्हेल्म की यह बात बहुत दिनों तक जमी नहीं रही सकी। आधुनिक मनोविज्ञान की चिन्तनधारा में अनेक उतार चढाव आए। जर्मनी के ही मनोवैज्ञानिकों ने , जो वुण्ट के विचारों के प्रबल विरोधी थे, उन्होने Gestalt मनोविज्ञान को जन्म दिया। मनोविज्ञान की इस चिन्तनधारा में जो प्रमुख थे वे है Max Wertheime, Kurt, Kofika, Wolfgang Kohler। इनका यह मानना है कि चेतना के विविध पहलुओं का अध्ययन उसके अवयवों को समझने द्वारा सम्भव नहीं है। Gestalt मनोविज्ञान को जर्मनी में 20 वीं शताब्दी के तीसरे दशक तक काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई। मनोविज्ञान की इस चिन्तनधारा ने Learning और Perception के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान किया। तभी कुछ विद्वानों ने यह प्रश्न उठाना शुरू किया कि चेतना का अध्ययन तो मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय हो ही नहीं सकता है। इस पर प्रयोग, प्रशिक्षण संभव नहीं है। जिसका अध्ययन किया जा सकता है वह है व्यवहार और व्यवहार ही मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय होना चाहिये। छोटे-मोटे और भी वैचारिक उतार-चढाव आए जिनका उल्लेख हम यहाँ नहीं कर रहे हैं। इस तरह Gestalt मनोविज्ञान के बाद व्यवहार मनोविज्ञान जिस चिन्तनधारा के मुखिया जॉन बी. वाटसन थे, अस्तित्व में आया । व्यवहार मनोविज्ञान का मानना है कि मनोविज्ञान का उद्देश्य व्यवहार के कारणों को खोज निकालना है। Stumili और Responeses के बीच रिश्ता खोजना Behavioural Psychology का मुख्य उद्देश्य बन गया।

अब प्रश्न पैदा होता है कि आज का मनोविज्ञान किन दिशाओं में जा रहा है? किन प्रश्नों का उत्तर खोज रहा है? किन सत्यों को उद्घाटित कर रहा है? जहाँ तक व्यवहार मनोविज्ञान का प्रश्न है, इसका यह मानना है कि मनुष्य के व्यवहार को बाह्य परिस्थितियाँ निर्धारित करती हैं। परिस्थितियों में परिवर्तन होने के साथ उसका व्यवहार परिवर्तित होता है। जब व्यवहार मनोविज्ञान स्थापित होने की प्रक्रिया में था तभी डाक्टरों की एक टीम खड़ी हो जाती है यह कहते हुए कि मानव के व्यवहार के कारण परिस्थितिजन्य न होकर जैव-वैज्ञानिक है। उन डॉक्टरों ने प्रयोग करके यह दिखाना शुरू किया है कि दिमाग के किसी स्थान पर बिजली का झटका देने से एक खास व्यवहार पैदा होता है। दूसरे स्थान पर झटका देने से कुछ और व्यवहार पैदा होता है । व्यवहार मनोविज्ञान परिदृश्य पर Sigmund Freud (1856-1939) जो खुद एक डॉक्टर था, अपनी मनोवैज्ञानिक चिकित्सकीय विधियों को जन्म देता है। उसका मानना है कि अचेतन मन मानव के व्यवहार निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विविध विचारधाराएँ आज भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में उत्पन्न एवं तिरोहित हो रही हैं। उनके विस्तार में जाना इस आलेख का उद्देश्य नहीं है। परन्तु यहाँ यह अनुचित न होगा कि हम उन विधियों

को थोडा समझ लें जिनके द्वारा आधुनिक मनोविज्ञान अपने निष्कर्षों पर पहुँचता है। उन विधियों की खामियों को समझना भी उचित होगा। इसके बाद हम चर्चा करना चाहेगें भारतीय मनोविज्ञान की । अगर आधुनिक मनोविज्ञान के उस शुरूआती दौर को, जिसमें चेतना का अध्ययन किए जाने का प्रयत्न किया गया था, छोड़ दें तो हम यह पाते हैं कि आधुनिक मनोविज्ञान अपने निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए अवलोकन , प्रयोग और प्रशिक्षण द्वारा आँकड़ों को एकत्रित करने और उनको विश्लेषण करने पर बल देता है। वह प्रयोगों, प्रशिक्षणों और आँकड़ों के साँख्यिकीय विश्लेषण द्वारा निष्कर्षों पर पहुँचता है। अवलोकन एवं साँख्यिकीय विधियों की सीमाएँ है। अवलोकन हम अपनी आँखों के माध्यम से करते है जिसकी सीमाएँ हैं। यंत्रों के प्रयोग द्वारा इसे हम बढ़ा सकते हैं। जैसे खुर्दबीन लगा ली दूरबीन लगा ली लेकिन आँखों द्वारा सम्पूर्ण वास्तविकता का अवलोकन संभव नहीं है। यही बात हमारी सारी इन्द्रियों के लिये सत्य है। जो निष्कर्ष इन्द्रियों की सहायता से प्राप्त जानकारियों द्वारा निकाले जाते हैं, वे पूर्ण हो ही नहीं सकते । यह बात भौतिकशास्त्र एवं मनोविज्ञान के अनेक प्रयोगों के लिये सत्य है इन्द्रियां यथार्थ का नहीं बल्कि प्रगटार्थ का उद्घाटन करती हैं । भौतिकशास्त्र के संबंध में एक बात यही कही जाती है कि अवलोकनकर्ता की उपस्थिति प्रयोग को प्रभावित करती है। यह बात सामाजिक एवं मनोविज्ञान के प्रयोगों के लिये भी सत्य है। जैसे ही पता चलता है कि हमारे ऊपर कोई प्रयोग किये जा रहे हैं, हम सतर्क हो जाते हैं। उस स्थिति में यह संभव है कि हमारा वास्तविक व्यवहार प्रगट न हो । जहाँ तक साँख्यिकीय विधियों का प्रश्न है; इनके अन्तर्गत आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं, प्रदर्श (Sample) का चुनाव किया जाता है। फिर उन पर साँख्यिकीय विधियाँ लगायी जाती है। प्रश्न यह है कि यदि हम प्रदर्श का आकार बदल दें तो क्या परिणाम अपरिवर्तित रहेगा। अथवा हम जिन तौर तरीकों का प्रयोग करते हैं, जैसे प्रश्नावली, अनुसूची आदि को बदल दें तो क्या परिणाम अपरिवर्तित रहेगा? इन प्रश्नों का सर्वमान्य उत्तर नकारात्मक है। अर्थात् प्रदर्श को बदल देने से, विश्लेषण की पद्धति को अथवा आँकड़े एकत्रित करने की विधि को बदल देने से परिणाम परिवर्तित हो जाते है। अत: साँख्यिकी सत्य तक पहुँचने में असमर्थ है। निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि इन्द्रियों की सीमाओं के कारण, साँख्यिकीय विधियों की अपनी अक्षमताओं के कारण जो कुछ भी प्रयोग, परीक्षण और विश्लेषण के पश्चात परिणाम निकाले जाते है, वे पूर्णत: विश्वसनीय नहीं रहते। मनोविज्ञान में ऐसे अर्द्धसत्यों का अम्बार लगा हुआ है।

एक अत्यन्त रोचक बात यह है कि अनेक मनोवैज्ञानिक निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए प्रथमत: जानवरों पर प्रयोग किये गये। जो निष्कर्ष निकाले गये उन्हें प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का निष्कर्ष कहते हैं। प्रयोग जानवरों पर किये गये उससे जो निष्कर्ष निकले उसे मानव समाज पर भी लागू किया जाने का प्रयास हुआ। कारण यह बताया गया कि क्योंकि मनुष्यों पर प्रयोग नहीं किये जा सकते -खतरों के कारण, लागतों के अधिक होने के कारण, इसलिये जानवरों पर प्रयोग किये गये। कुछ प्रयोग बीमार मनुष्यों और पागलों पर भी किये गये। उनसे जो निष्कर्ष निकाले गये उन्हें भी सामान्य मनुष्यों पर लागू किये जाने का प्रयास किया गया। मात्र 30-40 वर्ष पहले ही स्वस्थ मनुष्यों का अध्ययन कर, निष्कर्ष निकाल कर, इसका प्रयोग सामान्य मनुष्यों के लिए किया गया। इसे हम Humanistic Psychology के नाम से जानते है। प्रश्न यह उठता है कि अगर हम पागल नहीं है, अगर हम जानवर नहीं तो पागलों और जानवरों के ऊपर किए गए प्रयोगों के निष्कर्ष क्या हम पर लागू किए जा सकते है? हम स्वस्थ और सामान्य मनुष्य है । हमारी समस्या है कि हम अपनी उच्चतम स्थिति को प्राप्त करना चाहते है। अगर हम अपनी संपूर्णता को उद्घाटित करना चाहते तो हमें किस मनोविज्ञान से सहायता मिल सकती है ? निश्चित रूप से यह पागलों और जानवरों पर किए गये प्रयोगों से उपजा

मनोविज्ञान नहीं होगा। अपनी संपूर्णता को उद्घाटित करने के लिए हमें किसी दूसरी ही दिशा में देखना होगा। इस खोज में जब हम अपनी नजरे उठाते है तो हम यह पाते है कि हमारे शास्त्र एवं पुरानी बुद्धिमत्ता हमारे सहायक हो सकते है। व्यवहार मनोविज्ञान जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके है का मानना है कि जैसा Stimulus होगा Response वैसा मिलेगा। इसे कुछ लोग S-R मनोविज्ञान भी कहते है। सतही रूप में देखने पर यह बात ठीक भी लगती है और मन को भाती भी है, परन्तु थोड़ा इसकी गइराई में उतरें तो पाते है Stimulus हर समय अपने से परे होता है, बाहर होता है। उस पर नियंत्रण प्राय: अपना नहीं होता है। Response तो खुद करना होता है। अब जो stimulus को नियंत्रित कर रहे है वे हमारा व्यवहार नियंत्रित कर लेगें। आप समझने के लिए कह सकते है कि जब आप हमें गाली देंगे तो हम दुखी हो जाएगें और प्रशंसा करेगें तो प्रसन्न हो जायेगे। अत: आपकी भूमिका मदारी की और हमारी बंदर की हुई, जो मदारी के इशारे पर कार्य करता है। हम कम से कम अपने को इस मनोविज्ञान से नियंत्रित नहीं करवाना चाहेंगे। हम चाहेगे कि अपने व्यवहार को हम खुद नियंत्रित करें। अपने शान्त मन द्वारा, अपनी बुद्धि और विवेक द्वारा, परिस्थिति कितनी भी जटिल क्यों न हो अपनी प्रतिक्रिया हम खुद निर्धारित करेगें हम स्वतंत्र रहेगें। यह संभव भी है। यह स्थिति एक अच्छी स्थिति है जिसमें हमारा खुद पर नियंत्रण रहता है। हम मनोविज्ञान का पक्षधर होना स्वीकार करेंगे जो इस स्थिति को व्यवहारिक बनाने का उपाय बताता हो, न कि हमें असहाय स्थिति में छोड़ देता हो। जब हम पश्चिम के मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचने की पद्धतियों की चर्चा कर रहे थे , तो हमने रेखांकित किया था कि इन्द्रियों एवं सांख्यिकीय विधियों की सीमाओं के कारण और विश्लेषण की सीमाओं के कारण हमारे परिणाम पूर्ण नहीं है। जो भी निष्कर्ष प्रयोग और परीक्षण के द्वारा निकाले जाते है, उन्हें हमारा मन भी प्रभावित करता है। अत: जो निष्कर्ष मन एवं इन्द्रियों के संयोग तथा सहयोग द्वारा निकाले जाते हैं उनकी विश्वसनीयता संदिग्ध है।

भारतीय परंपरा में प्रमाणों को दो कोटियों में रखा गया है। प्रत्यक्ष प्रमाण और अप्रत्यक्ष प्रमाण। जो प्रमाण इन्द्रियों और मन के संयोग से प्राप्त होता है उन्हें शास्त्र प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं, उन्हें अविश्वसनीय मानते हैं। इसके विपरीत पश्चिम का मनोविज्ञान और विज्ञान उन्हें ही विश्वसनीय मानता है। कहा जाता है कि Seeing is believing जो देखा उसे सच माना। शास्त्र कहता है कि जो देखा वह भ्रम हो सकता है, असत्य हो सकता है, मन का खेल हो सकता है। शास्त्र उस प्रमाण को विश्वसनीय मानता है- जो इन्द्रियों से बाह्य होकर प्राप्त किए जाते हैं। प्रमाण की श्रेणी में आने वाले अन्य प्रमाणों की बात न करके अब आप्त वाक्य प्रमाण पर पहुँचता हूँ-जिसका मतलब है कि महापुरूष का कथन प्रमाण है, उसका वचन प्रमाण है, उसका दर्शन प्रमाण है क्यों कि जो कुछ वह व्यक्त करेगा, वह इन्द्रियों और मन से बाह्य होकर प्राप्त किया गया ज्ञान होगा । यहाँ अभिव्यक्ति के रूप में एक परेशानी और पैदा होती है। व्यक्त करने के लिए हम भाषा का प्रयोग करते है जिसकी अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं। इसलिए जो पहुँचा हुआ चिंतक है, मुनि है, वह अपने को भाषा के माध्यम से व्यक्त नहीं करता है। वह किसी और स्तर पर संप्रेषण करता है।

पश्चिम के मनोविज्ञान के संबंध में हम एक बात और कहना चाहेंगे कि इसकी आत्मा प्रयोगात्मक (एक्सपेरिमेंटल) होने में बसती है। पर यह प्रयोग किस पर किया जाता है? यह प्रयोग अपने पर नही किसी दूसरे पर किया जाता है। किसी दूसरे के व्यवहार को समझने की कोशिश की जाती है, उसको बदलने की कोशिश की जाती है। जबकि भारतीय चिंतन धारा विशेष रूप से स्व को समझने एवं बदलने पर बल देती है। पश्चिम का फोकस दूसरे पर है और पूर्व का फोकस अपने आप पर है।

पूर्व का मनोविज्ञान एक्सपेरिमेंटल है, अनुभव मूलक है। यह गारंटी करता है जो कुछ एक ने अनुभव किया है उसे दूसरों को भी अनुभव कराया जा सकता है। साधना की सीढ़ियों पर गुरु शिष्य का हाथ पकड़ कर चढ़ता है और उसे स्वसाक्षात्कार की ऊँचाईयों पर ले जाता है। उन अनुभवों को वर्णन करने में भाषा प्राय: लाचार रहती है। पूर्व और पश्चिम की मनोवैज्ञानिक विधियों की तुलना करने के लिए एक उदाहरण लेना चाहेंगे। क्रोध का उदाहरण लें, पश्चिम के मनोविज्ञान का एक मत है कि इसे व्यक्त कर देना चाहिए। अपने अनुभव में भी यह बात आती है कि यदि हम अपने गुस्से को व्यक्त कर देते हैं तो कुछ समय के लिए हमें शांति मिल जाती है, जैसे भाप बाहर निकल गई हो । भारतीय परंपरा इसे व्यक्त करने की मनाही करती है क्यों कि बार-बार व्यक्त करने से कोई ऋणात्मक गतिविधि हमारी आदत बन सकती है, हमारे संस्कार वैसे ही बन जाते है। कुछ आधुनिक विचारक कहते हैं कि क्रोध की दिशा बदल देनी चाहिए और उसे समाज परिवर्तन जैसे कार्यों में लगा देना चाहिये। पुन: शास्त्र सचेत करते है कि क्रोध को व्यक्त करना, उसकी दिशा को परिवर्तित करना या उसे दबाना तीनों गलत है। व्यक्त करने से आदत एवं संस्कार बनते है, संस्कार बनते है, दिशा बदलने से वह व्यापक होता है। दबाने से गांठ बनती है इसलिए गुस्से को समूल ही उखाड़ देना चाहिए। सवाल इस बात का पैदा होता है कि इसे उखाड़ा कैसे जाए। न केवल क्रोध के संदर्भ में, बल्कि अन्य मानसिक विकारों जैसे काम, मोह, लोभ आदि के विषय में अनेक शक्तिशाली विधियों का प्रयोग भारतीय शास्त्रों में मिलता है। भारतीय शास्त्र उच्चकोटि के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से भरे पड़े हैं । गीता, जैन एवं बौद्ध दर्शन गहरे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की खान है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम उनका अनुशीलन करें, उन्हें व्यवहार में ले आएँ। वे सब के सब अनुभव मूलक हैं, प्रयोग और परीक्षण मूलक नहीं है। आज यह बात प्रसन्नता की बात है कि प्रयोग और परीक्षण की बुनियादों पर खडा हुआ पश्चिम का मनोविज्ञान Transpersonal Psychology की ओर अग्रसर हो रहा है। यहॉ तक कि वह समाधि की बात करता है। पश्चिम के विज्ञान और मनोविज्ञान ने मात्र एक दशक में ही अपनी मान्यताओं को कई बार बदला है, इसलिए हम इसका आश्रय लेने में झिझकते है। हमारी परम्परागत बुद्धिमता हजारों साल के अनुभव से युक्त होकर स्थापित हो चुकी है। इसलिए हम इसका दामन नहीं छोड़ना चाहते। जब तक मनोविज्ञान के सिद्धांत पूर्णरूपेण स्थापित न हो जाए, प्रतीक्षा करने में ही हम बुद्धिमत्ता मानते हैं।

यहॉ जैन दर्शन के नमूने के रूप में, हम तीन आत्म विकास की विधियों का उल्लेख करना चाहेंगे।

1.सामायिक

2.कायोत्सर्ग

3.ध्यान

1. सामायिक-

सामायिक,जैन धर्म की, उन प्रमुख रीतियों में से एक है जिनके माध्यम से हम हमारी आत्मा के निकट अग्रसर होते हैं। सामायिक के दौरान हम, स्वयं को, रोजमर्रा की घरेलू, सामाजिक, व्यावसायिक व शैक्षणिक गतिविधियों से विलग करके, एक स्थान पर 48 मिनट तक बैठते हैं। इन 48 मिनटों में हम धार्मिक पुस्तकें पढ़ सकते हैं, माला जप सकते हैं या ध्यान भी कर सकते हैं । सामायिक शुरू करने से पूर्व हमें वस्त्र बदलने आवश्यक हैं। रोजमर्रा के वस्त्र नहीं पहनकर, हमें शुद्ध,सफेद, साधारण सूती वस्त्र पहनने आवश्यक हैं। सफेद रंग शुद्धता व शांति का प्रतीक है। सामायिक के समय रेशमी तथा चमड़े की तथा वे सभी वस्तुएँ जिनके निर्माण में जीवों की हिंसा हुई है,का प्रयोग वर्ज्य है।

2.कायोत्सर्ग-

ध्यान की प्रथम अवस्था कायोत्सर्ग है, जिसमें हम स्वयं के प्रति जागृत रहते हुए तनाव मुक्त रह सकते हैं। कायोत्सर्ग करने के लिए शरीर को सीधा, स्थिर , आरामदायक मुद्रा में तथा तनाव रहित रखें। रीढ़ की हड्डी व गर्दन सीधी हो। शरीर की सारी मांसपेशियों को तनाव मुक्त रखें। शरीर को इसी मुद्रा में कम से कम 5 मिनट रखें। शरीर पूर्णतः स्थिर व गतिहीन होना चाहिए कायोत्सर्ग के दो लाभ हैं -1 .पूर्ण शारीरिक विश्राम एवं 2. स्व-जागृति।

पूर्ण विश्राम की अवस्था को प्राप्त करने के लिए मानसिक रूप से , स्वयं के शरीर को कई भागों में बाटं लें और अपने मन को, एक- एक करके हर भाग पर एकाग्र करें। अनुभव करें कि हर मांसपेशी, हर शिरा एवं धमनी विश्राम अवस्था में आ रही है

1.इसी तरह पूरा शरीर विश्राम मुद्रा में है। पूर्णत: एकाग्र रहें व पूर्णत: जाग्रत भी ।

3.ध्यान-

हिंसा के मूल कारणों में से तनाव एक मुख्य कारण है। प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए अहिंसा आवश्यक है। हिंसा की जड़े बड़ी गहरी हैं जिनका समूल विनाश करना कठिन है पर असंभव नहीं। हिंसक प्रवृत्तियों के विनाश का उत्तम तरीका है ध्यान।

हिंसक प्रवृत्ति का सीधा संबंध तनाव से हैं। तनाव की अनुपस्थिति में हिंसा नहीं हो सकती। एक तनाव मुक्त व्यक्ति हिंसक नहीं हो सकता। जब मांसपेशियां व मन तनाव पूर्ण हो तब भावनाएं भी तनाव युक्त हो जाती हैं। हिंसा इसी का प्राकृतिक उत्पाद है।

तनाव के दो प्रकार हैं -एक वह जो अभिमान व लोभ से पैदा होता है, दूसरा वह जो पराजय व निराशा से पैदा होता है। हर प्रकार का तनाव हिंसा को उत्पन्न करता है। तनाव को दूर करने का तरीका है ध्यान की कई विधियाँ हैं जैसे-कायोत्सर्ग जिसमें शरीर को स्थिर रखकर ध्यान किया जाता है, और अनुप्रेक्षा जिसमें गहरी श्वांस लेकर उसे धीरे- धीरे छोड़ा जाता है। कायोत्सर्ग से शारीरिक तनाव दूर होता है, अनुप्रेक्षा से मानसिक। ध्यान की अन्य विधियाँ जैसे इंद्रियसंयममुद्रा, ज्योतिकेन्द्रप्रेक्षा, अनित्य अनुप्रेक्षा,अन्देकत्व अनुप्रेक्षा आदि हैं जो विशेष प्रकार के तनावों को दूर करने के लिए है।

उपरोक्त विधियॉ हजारों वर्षों से लोगों को लाभ पहुँचाती रही हैं। मनोविज्ञान में आ रही नई विधाएँ जैसे Humanistic Psychology and Transpersonal Psychology उन विधियों का विरोध न करके इनके समर्थन में झुकती नजर आ रही हैं।

प्राप्त: 15:11:10

वर्ष - 23, अंक - 4, अक्टूबर-दिसम्बर - 2011, 15-26

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन आगमिक व्याख्या साहित्य का कालक्रम में विकास

■ वंदना मेहता*

सारांश

प्रस्तुत आलेख में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर परम्परामान्य उपलब्ध आगमिक व्याख्या साहित्य निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, संस्कृत टीकाओं एवं लोकभाषा की टीकाओं को कालक्रम से सूचीबद्ध किया गया है। यह प्राथमिक सूची है अनेक अन्य नाम इसमें जोड़े जा सकते हैं।

जैन साहित्य में आगमिक व्याख्या साहित्य अपने आप में बहुत विशाल एवं महत्त्वपूर्ण विषय है। मैं अपने शोध के दौरान यह महसूस कर रही थी कि जैन आगमिक व्याख्या साहित्य का भी कालक्रम से विकास के बारे में जानाकारी हो और यथासमय उसका उपयोग किया जा सके। इस विषय पर Prof. S.R.Banerjee के Chronological Development of Jain Literature.[1] लेखक ने लगभग समस्त जैन साहित्य के बारे में उल्लेख कर दिया, किन्तु जैन आगमिक व्याख्या साहित्य विषय अछूता रहा अत: उन्हीं के निर्देशानुसार जैन आगमिक व्याख्या साहित्य के कालक्रम से विकास को आपको सामने प्रस्तुत करने की कोशिश कर रही हूं ताकि शोधार्थियों को इससे विशेष लाभ प्राप्त हो सके।

मूल ग्रंथ के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए उस पर व्याख्या साहित्य का निमाण करना भारतीय ग्रंथकारों की बहुत पुरानी परम्परा रही है और ऐसा ही जैन आगम ग्रंथों के साथ हुआ। जैन आगमों का विशाल व्याख्या साहित्य प्राप्त होता है। वह मुख्यत: पांच भागों में हमारे सामने हैं।

1. निर्युक्ति (निज्जुत्ति)
2. भाष्य (भास)
3. चूर्णि (चूण्णि)
4. संस्कृत टीकाएं
5. लोकभाषा में रचित व्याख्याएं।

1. निर्युक्ति - जैन आगम साहित्य पर सर्वप्रथम प्राकृत भाषा में रचित पद्यबद्ध टीकाएं निर्युक्ति नाम से विश्रुत हैं। निर्युक्तियों में मूल ग्रंथ के प्रत्येक पद की व्याख्या न कर मुख्य रूप से पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या की गई है। निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु द्वितीय (5-6 ईस्वी शताब्दी) माने जाते हैं। यद्यपि कुछ विद्वान भद्रबाहु प्रथम को भी निर्युक्तिकार स्वीकार करते हैं।

2. भाष्य - निर्युक्तियों के गंभीर रहस्यों को प्रकट करने के लिए विस्तार से निर्युक्तियों के समान ही प्राकृत भाषा में जो पद्यात्मक व्याख्याएं लिखी गई वे भाष्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। निर्युक्तियों के शब्दों में छिपे हुए अर्थ बाहुल्य को अभिव्यक्त करने का श्रेय सर्वप्रथम भाष्यकारों को है। कुछ

* सहायक प्राध्यापक : जैन विश्व भारती वि.वि., लाडनूँ 341 306

भाष्य निर्युक्तियों पर और कुछ भाष्य मूलसूत्रों पर लिखे गए है। भाष्यकारों में जिनभद्रगणी (6-7 ईस्वी शताब्दी) और संघदासगणी (6-7 ईस्वी शताब्दी) ये दो प्रमुख माने जाते हैं।वसुदेवहिण्डी के रचनाकार संघदासगणी (6 ईस्वी शताब्दी) भाष्यकार संघदासगणी दोनों अलग-अलग है। भाष्य प्राकृत एवं संस्कृत दोनों भाषाओं में लिखे गये है।

3. चूर्णि - शुद्ध प्राकृत और संस्कृत मिश्रित प्राकृत व्याखाओं की रचना चूर्णि साहित्य के नाम से जानी जाती है। ये भी सभी आगमों पर नहीं लिखी गई। चूर्णि साहित्य के रचनाकारों में जिनदासगणी महत्तर (6-7 वीं शताब्दी) का मूर्धन्य स्थान है।

4. टीका - संस्कृतभाषा में रचित जिस साहित्य में आगमों का दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषण है वह टीका साहित्य है। इस युग में आगमों पर तो टीकाएं लिखी गई परन्तु साथ ही निर्युक्ति भाष्य और टीकाओं पर भी टीकाएं रची गई। टीकाओं के लिए आचार्यों ने विविध नामों का प्रयोग किया है , यथा– टीका , वृत्ति, विवृत्ति, विवरण, विवेचन, व्याख्या, वार्तिक, दीपिका, अवचूर्णि, पंजिका, टिप्पण, टिप्पणक, पर्याय, स्तबक, पीठिका, अक्षरार्थ।

5.लोकभाषाओं में रचित व्याख्याएं - संस्कृत प्राकृत भाषाओं से अनभिज्ञ जनसाधारण के लिए आगमों के शब्दार्थ करने वाली लोकभाषाओं में संक्षिप्त सरल और सुबोध शैली में टीकाएं लिखी गई। जिसकी भाषा राजस्थानी मिश्रित प्राचीन गुजराती है। पार्श्वचन्द्रगणि (16 ईस्वी शताब्दी) और धर्मासिंहमुनि (18 ईस्वी शताब्दी) लोकभाषाओं में रचित व्याख्याकारो में प्रमुख है।

इस लेख में तिथि निर्णय में प्रमुख रूप से निम्न ग्रंथों का उपयोग किया है।

1. Hiralal Rasiklal Kapadia, History of Canonical literature of Jainas.[2]
2. जिन रत्न कोश[3]
3. मोहनलाल मेहता, जैन साहित्य का वृहद् इतिहास आगमिक व्याख्यायें, भाग-3[4]
4. जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास[5]
5. देवेन्द्र मुनि - जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा[6]

किन्तु जो आगमिक व्याख्या हमें उपलब्ध तथा प्रकाशित है उन्हें ही अधिकतम लिया गया है और श्वेताब्बर और दिगम्बर (षट्खण्डागम एवं कषायपाहुड) दोनों के व्याख्या साहित्य तथा उनके टीकाकारों का ईस्वीं शताब्दी में समय दिया है।

मैं यह निश्चित रूप से तो नहीं कह सकती कि इसमें सम्पूर्ण आगमिक व्याख्या साहित्य तथा उनके ग्रन्थकारों का समावेश हो गया अथवा किया गया। फिर भी उपर्युक्त ग्रंथों के आधार पर ज्यादा से ज्यादा संकलन करने का प्रयास किया गया। एक ध्यान देने योग्य बात यही है कि इसमें तिथि निर्णय में मेरा निर्णय ही अन्तिम है ऐसा नहीं समझना चाहिए। यद्यपि सर्वमान्य तिथियों का ही बहुतायत में उपयोग किया गया है। विद्वानों को इसे जांचना परखना चाहिए और अन्तिम निर्णय पर आने का प्रयास किया जाना चाहिए।

जैन आगमिक व्याख्या साहित्य का कालक्रम से विकास निम्न चार्ट के माध्यम से प्रस्तुत है।

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
6ठवी ई., शदी	भद्रवाहु द्वितीय (505)	आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार (प्रा.) (सूर्यप्रज्ञाप्ति और ऋषिभाषित निर्युक्ति अनुपलब्ध) ओघनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति पंचकल्पनिर्युक्ति और निशीथनिर्युक्ति क्रमशः आवश्यक, दशवैकालिक, बृहत्कल्प और आचारांग निर्युक्ति की पूरक है।				
–	संघदासगणी		बृहत्कल्पलघुभाष्य, पंचकल्पमहाभाष्य, निशीथ (प्रा.)			
7वीं ई.शदी	जिभद्रगणी क्षमाश्रमण		जीतकल्पभाष्य, विशेषावश्यकभाष्य (609 में पूर्ण किया)		विशेषावशक भाष्य पर स्वोपज्ञवृत्ति (पूर्ण)	
	अगस्त्यसिंह/ कलशभवमृगेन्द्र		दावैकालिक (प्रा.)			

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
	जिनदासगणी महत्तर (635-710)			निशीथविशेष, नंदी-(676 में रचना पूरी हुई) अनुयोगद्वार, आव श्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग,(सं.प्रा.)		
	?			व्यवहार, ओधनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति (प्रा.)		
	कोट्याचार्य				जिनभद्रगणी श्रमाश्रमण की अपूर्णस्वोपज्ञवृत्ति विशेषावश्यकभाष्य, विवरण रूप में पूर्ण की	
8 वीं ई.शादी	हरिभद्रसूरि (याकिनी पुत्र) (705-775)				नंदीवृत्ति, अनुयोगद्वार, दशवैकालिक (शिष्यबोधिनी वृत्ति या बृहद् वृत्ति) प्रज्ञापना प्रदेशव्याख्या,	

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
					आवश्यक वृत्ति	
9वीं ई.शदी	वीरसेन (743-823)				धवलाटीका (792-816 कुल 24 वर्ष लगे) जयधवला (816 में पूर्ण किया 20 हजार श्लोक प्रमाण रची अपूर्ण)	
	जिनसेन (वीरसेन के शिष्य 753-843)				जयधवला वीरसेन की अपूर्ण टीका (837 में पूर्ण की 40 हजार श्लोक प्रमाण) महाधवलाटीका (प्रा. सं.)	
	शीलांक शिलाचार्य/ तत्त्वादित्य (862/872)				आचारांगवृत्ति सूत्रकृतांगवृत्ति	
10वीं. ई. शदी	शान्त्याचार्य/ शांतिसूरि (10-11 ई. शदी के बीच)					

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
11.वी. ई. शदी	शान्त्याचार्य/ शांतिसूरि (1036 में मृत्यु)				उत्तराध्ययनवृत्ति (शिष्यहितावृत्ति या पाइयटीका)	
	मलधारी हेमचन्द्र (1007-1113)				आवश्यकवृत्ति प्रदेशव्याख्या (हरिभद्रीयावश्यकवृत्ति विशेषावश्यक भाष्यबृहद् वृत्ति (शिष्यहितावृत्ति)	
	अभयदेवसूरि (1015-1078)				स्थानांगवृत्ति, समवायांगवृत्ति, व्याख्याप्रज्ञप्तिवृत्ति, उपासकदशावृत्ति, अन्तकृतदशावृत्ति, अनुत्तरोपपातिकदशावृत्ति, प्रश्नव्याकरणवृत्ति, विपाकसूत्र, औपपातिकवृत्ति (1063-1071 वृत्तिकाल)	
	नेमिचन्द्रसूरि/ देवेन्द्रगणि				उत्तराध्ययन सुखबोधावृत्ति (1072 में पूर्ण की)	
	द्रोणाचार्यसूरि					

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
12 वीं सं.शदी	श्रीचन्द्रसूरि/ पार्श्वदेवगणी (1117)				निशीथ चूर्णि दुर्गपद व्याख्या (1117 पूर्ण की) निरयावलिकावृत्ति, नंदीसूत्र हरिभद्रीय टिप्पणक	
	द्रोणाचार्यसूरि 1149				ओधनिर्युक्ति वृत्ति	
	मलयगिरि (11-12ई.शदी)				नंदीवृत्ति, प्रज्ञापनावृत्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति,जीवाजीवा- भिगम वृत्ति, व्यवहारवृत्ति, पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति, आवश्यक विवरण (अपूर्ण प्राप्त) बृहत्कल्पपीठिका वृत्ति की अपूर्ण टीका	
	सिद्धसेनासूरि (1170)			जीतकल्प बृहद् चूर्णि विषमपद व्याख्या (प्रा. 1170 में पूर्ण की)		
13वीं ई. शदी	क्षेमकीर्ति (1275)				मलयगिरिरचित बृहद् कल्प की अपूर्ण टीका पूर्ण की	

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
	जिनप्रभसूरि				सन्देह विषौषधिककल्प पंजिका	
	प्रलम्बसूरि (1275)			बृहत्कल्प चूर्णि (सं.प्रां.)		
	पृथ्वीचन्द्रसूरि				कल्पसूत्रटिप्पणक	
	क्षेमारत्न				पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति (अवचूरि)	
	माणिक्यशेखर (14-15ई. शदी के बीच)				आवश्यकवृत्ति, पिण्डनिर्युक्ति दीपिका	
15वीं ई. शदी	कमल संयत (1497)				उत्तराध्ययन टीका	
16वीं ई.शदी	पार्श्वचंद्र(1515)				आचारांगवृत्ति	
	पार्श्वचंद्रगणी					आचारांग, सूत्रकृतां ग पर बालावबोध
	जिनहंस (1525)				आचारांगटीका	
	हर्षकुल (1526)				सूत्रकृतांग दीपिका (विवरण) भागवती एवं उत्तराध्ययनटीका	

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
	साधुरंग उपाध्याय (1542)				सूत्रकृतांगवृत्ति (स्तबक)	
	दानशेखर				भगवती/व्याख्याप्रज्ञप्ति लघुवृत्ति	
	धर्मासागर (1571)				कल्पकिरणावली	
	अजितदेवसूरि (1572)				आचारांगवृत्ति (दीपिका)	
	विजय विमल (1577) वानरर्षि				तन्दुलवैचारिक,गच्छाचार वृत्ति (1577 में) गच्छाचार प्रकरण की वृत्ति	
17वींई शदी	शांतिचन्द्रगणी (1603)				जम्बूद्वीपप्रसप्ति पर प्रमेय रत्नमंजूषा की टीका	
	संघविजयजी (प्रन्यास) (1617)				प्रदीपिकीवृत्ति (धनविजयजी ने 1624 में परिमार्जन किया)	
	संघविजयजी (1619)				कल्पप्रदीपिका	
	जयविजयजी (1620)				कल्पदीपिका	

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
	समयसुन्दरगणी (1624)				दशवैकालिकवृत्ति	
	लक्ष्मीवल्लभ				उत्तराध्ययन टीका	
	भावविजय (1632)				उत्तराध्ययन टीका (सर्वार्थसिद्धि)	
	विनयविजयजी (1639)				कल्पसुबोधिनी/ सुबोधिका	
	समयसुन्दरगणी (1642)				कल्पलता	
	शांतिसागरजी (1650)				कल्पकौमुदी	
	शिवनिधानगणी				कल्पाव्याख्यानपद्धति (अपूर्ण)	
	लक्ष्मीवल्लभसूरि				कल्पद्रुमकलिका	
18वीं ई.शदी	ज्ञानविमलसूरि (1736)				प्रश्नव्याकरणवृत्ति सुखबोधिकावृत्ति	
	धर्मसिंहमुनि (लोकागच्छीय स्थानकवासी)					स्थानकवासी परम्परा मान्य 32 आगमों पर बालावबोध टब्बों

कालक्रम से शताब्दी	टीकाकार	नियुक्ति	भाष्य	चूर्णि	संस्कृत टीका	लोकभाषा में रचित व्याख्या
						का निर्माण (सभी अप्रकाशित)
19वीं ई.शदी	श्रीमद् जयाचार्य (श्वेताम्बर तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य) (1803-1881)				आचारांग पद्यानुवाद (प्रथमश्रुतस्कन्ध) आचार-चूलावार्तिक ज्ञाताप्रज्ञापना, उत्तराध्ययन 29 अध्ययन भगवतीसूत्र पर पद्यात्मक व्याख्या, आचारांग द्वितीयश्रुतस्कन्ध का वार्तिक	भगवतीसूत्र पर राजस्थानी भाषा मे जोड़ का निर्माण
	घीसालालजी महाराज (स्थानकवासी आचार्य (1884 में जन्म)				स्थानकवासी-तेरहपंथी मान्य 32 आगमों पर संस्कृत टीकाएं	
	राजेन्द्रसूरि (1889-1929)				कल्पसूत्रार्थप्रबोधजी	
20 वीं इ.शदी	आचार्यमहाप्रज्ञ 1920 में जन्म		आचारांग भाष्यम् (सं.) 1994 में पूर्ण किया			

संदर्भ ग्रंथ -

1. Jain Journal, Vol. XXXV, No-4, April-2001 पुनः प्रकाशित
   Prolegomena to Prakritikaet Jainica, Asiatic Society Kolkata, 2005, 197-225
2. Bombay, 1941, Reprinted by Shardaben Chimanbhai Educational Research Centre, Opp. Ranakpur Society Sahibag, Ahmedabad.
3. संपादक हरिदामोदर वेलणकर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1944
4. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1957
5. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1961
6. तारक गुरु ग्रंथालय, उदयपुर, 1977, द्वितीय संस्करण, 2005

प्राप्त : 26.01.11

डॉ. सरोज कोठारी को बेस्ट साइकोलॉजिस्ट अवॉर्ड

इण्डियन साइकोमेट्रिक एण्ड एजुकेशनल रिसर्च एसोसिएशन आगरा द्वारा डॉ. सरोज कोठारी प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इन्दौर को सम्मानित किया गया। आगरा में आयोजित नेशनल सेमिनार में डॉ. कोठारी को प्रोफेसर ए.के.पी. सिन्हा मेमोरियल **बेस्ट साइकोलॉजिस्ट अवॉर्ड 2011** प्रदान किया गया। इस सेमिनार में रिसोर्स पर्सन के रूप में डॉ. कोठारी ने **''रोल ऑफ टीचर्स इन हायर एजुकेशन''** विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया। डॉ. कोठारी के दो सौ से भी अधिक शोध पत्र एवं लेख प्रकाशित हो चुके हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियों एवं उत्कृष्ट शोध कार्य के आधार पर डॉ. कोठारी को पूर्व में भी कई अवार्डस् प्राप्त हुए हैं।

वर्ष - 23, अंक - 4, अक्टूबर-दिसम्बर - 2011, 27-36

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

शब्द

■ प्रभात कुमार जैन*

सारांश

प्रस्तुत आलेख में जैन दर्शनानुसार शब्द की परिभाषा, स्वरूप, शब्द के भेद, उत्पत्ति के कारण, प्रकार आदि की विस्तार पूर्वक चर्चा करने के उपरान्त विज्ञान एवं वैयाकरणों की दृष्टि से शब्द के स्वरूप की चर्चा की गयीहै।

तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट जैन दर्शनानुसार यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड 6 द्रव्यों- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल से निर्मित है। इनकी संख्या निश्चित 6 ही हैं, न कम और न अधिक।

'' धम्माधम्मागासा गदिरागदि जीव पोग्गलाणं च।
जावत्तावल्लोगो आयासमदो परमणंतं ।।5।।[1]

इन 6 द्रव्यों में मात्र एक पुद्गल मूर्तिक है तथा स्पर्श, रस , गन्ध व वर्णयुक्त है । धर्म, अधर्म, आकाश व काल-ये चार द्रव्य पुद्गल की भाँति अचेतन हैं, किन्तु अमूर्तिक हैं। केवल जीव अमूर्तिक व चेतन है। संसारी अवस्था में यह जीव इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से सामान्यत: 5 भेदों में वर्गीकृत किया गया है जिनका निश्चित क्रम स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण है अर्थात – यदि कोई एकेन्द्रिय जीव है तब मात्र स्पर्शनेन्द्रिय ही है। द्वीन्द्रिय जीव में स्पर्शन व रसनेन्द्रियाँ ही है। इसी क्रम से एक - एक इन्द्रिय का सद्भाव होते हुए जीवों का विकास क्रम चलता है। यह जीव के विकास की पराकाष्ठा है। किन्तु **'समनस्कामनस्वस्का:'** के आधार पर पंचेन्द्रिय जीवों के पुन : दो भेद 'संज्ञी' व 'असंज्ञी' हो जाते हैं । जैन जीव विज्ञान के अनुसार जीवों का यह वर्गीकरण अकाट्य एवं सनातन है। आधुनिक प्राणि विज्ञान व वनस्पति विज्ञान (Zoology, Botany) में किये जाने वाले वर्गीकरण में कुछ अपवाद, वर्गीकरण के आधार पर शंका उत्पन्न कर देते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में अब मुख्य तथ्य है, उनमें उपस्थित इन्द्रियों के विषय। प्रत्येक इन्द्रिय का विषय अपना विशिष्ट व अन्यों से भिन्न होता है। इन विषयों में एक प्रमुख विषय है - भाषा।

जैन दर्शन व विज्ञानानुसार भाषा का उद्गम द्वीन्द्रिय जीवों से प्रारंभ होता है अर्थात् एकेन्द्रिय जाति के पाँचों वायुकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, पृथ्वीकायिक व वनस्पतिकायिक जीवों में किसी भी प्रकार की भाषा नहीं पायी जाती। भाषा के लिये प्रमुख आवश्यकता है - रसनेन्द्रिय का सद्भाव अर्थात् रसना आते ही भाषा का निर्माण व उपयोग होने लगता है जो संज्ञी पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट अवस्था तक है।

सार्थकात्मक भाषा उत्पन्न करने के लिये मुख्यत: पाँच उपांगों की आवश्यकता होती है - कंठ, तालू, जिह्वा, दन्तावली एवं ओष्ठ। यह आवश्यक नहीं कि एक समय में अर्थात् सभी ध्वनियों या वर्णों के लिये पाँचों ही उपाङ्ग आवश्यक हो किन्तु यह आवश्यक है कि सार्थकता से भावों की पूर्ण व स्थूल अभिव्यक्ति शब्द हैं । यहाँ प्रश्न उठता है कि भाषा क्या है ?

धवलाकार आचार्य वीरसेन स्वामी ने षट्खण्डागम के वग्गणाखण्ड में पुद्गल के भिन्न-भिन्न स्वभावों व उपयोग के आधार पर उसके 23 खण्ड किये हैं, जिन्हें 23 वर्गणा कहा जाता है। इन

* KH 93, FF-2, शांति निकेतन, कविनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

वर्गणाओं के क्रम में नवीं संख्या - भाषा वर्गणा है।

पुद्‌गल द्रव्य मुख्यत : दो रूपों (1) अणु व (2) स्कन्ध अवस्था में पाया जाता है। अणु अविभागी, अदृश्य, अग्राह्य, स्कन्धान्त्य, धातु चतुष्करण , एक , आदेशमात्र, मूर्त, शब्द कारण, स्कन्धान्तरित, द्विस्पर्शी आदि मध्य व अन्त से रहित अवस्था वाला है तथा 343 घनराजू क्षेत्र प्रमाण (त्रिलोक) में सर्वत्र विद्यमान है किन्तु दो अणुओं के संयोग से , विभावरूप अवस्था को प्राप्त होकर स्कन्ध बन जाता है। इन स्कन्धों में दो से लेकर संख्यात, असंख्यात, अनन्त व अनन्तान्त अणु हो सकते हैं। अणुओं के संयोग से, इस स्कन्ध अवस्था में विभिन्न गुण भी प्रकट हो जाते हैं।आचार्य वीरसेन स्वामी तथा फिर सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने क्रमश: धवला व गोम्मटसार कर्मकाण्ड में इसी आधार पर 23 वर्गणारूप भेद किये हैं। इतना विशेष है कि वर्गणा शब्द से अकर्म जाति, कर्म जाति व नोकर्म जाति के पुद्‌गलों का बोध भी होता है।

'' अणुसंखांसंखेज्जाणंता य अगेज्झगेहि अंतरिया।
आहार तेजभासामण कम्मइया धुवक्खंधा ।।594।।
सातंर णिरतंरेण य सुण्णा पत्तेय देह धुवसुण्णा।
बादर णिगोद सुण्णा सुहुमणिगोदा णभो महाक्खंधा ।। 595।।[2]

अर्थात्- लोक में तेइस वर्गणाएँ हैं - (1) अणुवर्गणा (2) संख्याणु (3) असंख्याणु (4) अनन्ताणु (5) आहार (6) अग्राह्य (7) तैजस (8) अग्राह्य (9) भाषा (10) अग्राह्य (11) मनो (12) अग्राह्य (13) कार्माण (14) ध्रुव (15) सातंरनिरन्तर (16) शून्य (17) प्रत्येक शरीर (18) ध्रुवशून्य (19) बादर निगोद (20) शून्य (21) सूक्ष्म निगोद (22) नभो या शून्यनभो (23) महास्कन्ध वर्गणा।

उन वर्गणाओं में 'शब्द वर्गणा ' का क्रमांक नौ है। इसे भाषा वर्गणा भी कहते हैं।

आठवीं अग्राह्य वर्गणा की उत्कृष्ट स्थिति से एक परमाणु अधिक होने पर भाषा वर्गणा की जघन्य अवस्था आती है तथा इस जघन्य स्थिति में सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाषित लब्ध को मिलाने पर भाषा वर्गणा की उत्कृष्ट स्थिति आती है जबकि मध्यम अवस्थाएँ असंख्यात होती हैं।

धवलाकार ने इस वर्गणा की स्थिति (जघन्य) को निर्धारित कर सूत्र दिया है -

'' अगहणदव्व वग्गणाणमुवरि भासादव्व वग्गणा णाम ।83।''[3]

अर्थात् - अग्रहण द्रव्य वर्गणाओं के ऊपर भाषा द्रव्य वर्गणा है। अत:

भाषा वर्गणा की जघन्य स्थिति = आठवीं अग्राह्य वर्गणा का उत्कृष्ट + 1 परमाणु

भाषा वर्गणा की उत्कृष्ट स्थिति = जघन्य स्थिति + जघन्य स्थिति / सिद्धराशि का अनन्त

सिद्ध राशि का अनन्तवां भाग मिलाने पर भाषा वर्गणा की उत्कृष्ट स्थिति अनन्त ही आती है तथा जो भी द्वीन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रिय जाति तक के जीव, भाषा के लिये त्रस नाड़ी में इन्हीं कणिओं के अपने अंगों, उपांगों के उपकार से तथा स्वर नाम कर्म के उदय से भाषा वर्गणा को वचनों में परिवर्तित करते हैं।

भाषा वर्गणा के स्कन्धों से चार प्रकार की भाषा होती है।[4]

द्रव्य व भाव के भेद से वाक् (भाषा) के दो भेद किये गये हैं । भाववाक् वीर्यान्तराय, मतिज्ञानावरण व श्रुतज्ञानावरण कर्मों के क्षयोपशम से तथा अंगोपांग नामकर्म से उदय के निमित्त से होने वाला - पौद्‌गलिक है। इनके अभाव में बोलने की शक्ति अर्थात् भाव वाक् का अभाव है। तदनन्तर भाव वाक् की शक्ति से युक्त (वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से) क्रियावान् आत्मा के द्वारा प्रेरित

पुद्‌गल वचनरूप परिणत होते हैं तथा द्रव्यवाक् पौद्‌गलिक होने से श्रोत्रेन्द्रिय का विषय बनता है। वचन पौद्‌गलिक होने पर भी अन्य इन्द्रियों का विषय नहीं बनता क्योंकि भावेन्द्रिय तथा द्रव्येन्द्रिय की आन्तरिक व बाह्य रचना के अनुसार ,केवल कर्णेन्द्रिय द्वारा ही शब्द का ग्रहण होता है, मूर्त दीवारों से टकराता है तथा टोका जाता है। इसी कारण विज्ञान द्वारा परिभाषित शून्य (वायुमण्डल के कम या क्षीण दबाव) अथवा ध्वनिरोधी (soundproof) कक्षों में ध्वनि या भाषा सुनायी नहीं देती। अत: वचन, अमूर्तिक न होकर, मूर्तिक ही हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी पंचास्तिकाय में शब्द की व्याख्या करते हैं -

सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणु संग संघादो।
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादिओ णियदो ।।79।।[5]

शब्द स्कन्ध से उत्पन्न होता है। वह स्कंध अनन्त परमाणुओं के संयोग से बनता है। उन स्कन्धों के परस्पर स्पर्श होने -संघात अर्थात् टकराने (Collision) पर निश्चय से भाषा वर्गणाओं से होने वाला शब्द उत्पन्न होता है।

महर्षि पाणिनि के अनुसार 'शब्द' की व्युत्पत्ति 'शब्द्' में घञ् प्रत्यय के योग से हुई है जो 'अ' में परिवर्तित होकर ' शब्द् + अ = शब्द' बनाता है। 'शब्द' का अर्थ भी 'ध्वनि करना ' ही है।[6]

स्कंध दो प्रकार के होते हैं - एक भाषा वर्गणा योग्य स्कन्ध, जो शब्द के मूल कारण हैं , अत्यंत सूक्ष्म हैं, समस्त लोक में व्याप्त हैं तथा दूसरे अंगोपांग नामकर्म के उदय से निर्मित बाह्य कारण रूप, कण्ठ, तालु, ओष्ठ घण्टा आदि का हिलना, किसी वस्तु का गिरकर टकराना, पत्थरों का टकराना, जल की लहरों का प्रवाह, मेघादि का मिलना आदि जो स्थूल स्कंध हैं। ये तीन लोक में सर्वत्र नहीं पाये जाते। इन दोनों अन्तरंग व बाह्य सामग्री व निमित्तों का जहाँ मेल होता है, वहाँ भाषावर्गणा शब्दरूप में परिवर्तित हो जाती है किन्तु सर्वत्र नहीं। शब्द के लिये उपादान क्षमता 'शब्दवर्गणा' की ही है, अत: नियम से भाषा वर्गणा से शब्द उत्पन्न होते हैं। यहाँ इस मान्यता का भी निराकरण हो जाता है कि शब्द या ध्वनि आकाश द्रव्य का गुण है। यदि वह सत्य माना जाये तब आकाश अमूर्तिक होने से , शब्द भी अमूर्तिक हो जायेगा तथा अरूपी होने से उसका संघात (collision) न होने से ध्वनि या शब्द कैसे उत्पन्न होंगे, फिर कर्णेन्द्रिय द्वारा या कम्पन द्वारा ये अन्य इन्द्रियों से ग्रहण भी नहीं ही पायेंगे।

आचार्य ने **'उप्पादिगो'** का प्रयोग करके यह लक्षण भी निश्चित किया है कि शब्द स्वयं उत्पन्न नहीं होता, बल्कि पुरुष आदि की प्रेरणा से उत्पन्न होता है जो प्रायोगिक है। **'णियदो'** के प्रयोग से यह भी सिद्ध किया कि मेघ, जल की धारा, पत्थर आदि के टकराने से उत्पन्न शब्द स्वाभाविक अर्थात् – 'वैश्रसिक ' हैं।

इस प्रकार प्रथमत: शब्द के दो भेद-भाषा रूप व अभाषा रूप बनाते हैं । भाषा शब्द पुन: दो प्रकार के होते हैं - अनक्षरात्मक व अक्षरात्मक। द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय की ध्वनि तथा केवली भगवान् की नि:सृत वाणी अनक्षरात्मक है तथा संज्ञी पंचेन्द्रियों के, मन के सहयोग से उत्पन्न शब्द 'अक्षरात्मक' हैं । जैसे आर्य, अनार्य आदि द्वारा प्रयुक्त होने वाली संस्कृत , प्राकृत , अपभ्रंश आदि नाना प्रकार की भाषाएँ ।

अभाषात्मक शब्दों में भी दो भेद-प्रायोगिक व वैश्रसिक होते हैं।

धवलाकार आचार्य वीरसेन स्वामी ने वग्गणाखण्ड में छह प्रकार के शब्दों का उल्लेख किया है - तत, वितत, धन, सुषिर, घोष और भाषा।

'' तद विददो घण सुसिरो घोसो भासा त्ति छव्विहो सद्दो।
सो पुण सद्दो तिविहो संतो घोरो य मोघो य ।।2।।[7]

वीणा , त्रिसरिक, आलापिनी, वव्वीसक, सुक्खुण आदि से उत्पन्न शब्द **तत** है। भेरी, मृदङ्ग, पटह आदि से उत्पन्न शब्द **वितत** है। जय, घण्टा आदि ठोस द्रव्यों के अभिघात (चोट) से उत्पन्न शब्द **सुषिर** हैं। घर्षण को प्राप्त हुए द्रव्य से उत्पन्न शब्द घोष हैं। भाषा- अक्षरात्मक व अनाक्षरात्मक भेद से दो प्रकार की है। वे छह प्रकार के शब्द अन्यत्र उत्पन्न हुए तथा कर्ण प्रदेशों में प्रवेश करके श्रोत्रेन्द्रिय 'भाव रूप से क्षयोपशम को प्राप्त जीव प्रदेशों से सम्बद्ध है, तब उनका ग्रहण होता है। इसे ही 'श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रह' नाम आचार्यों द्वारा दिया गया है।

शब्द के लिये एक और तथ्य जानना अत्यंत आवश्यक है कि शब्द पुद्गल अपने उत्पत्ति स्थान से उछलकर (स्फोट को प्राप्त होकर) दशों दिशाओं में जाते हैं तथा उत्कृष्ट अवस्था में तीन लोक के अन्त में अन्तिम तनुवात वलय तक भी जा सकते हैं। धर्मास्तिकाय का अभाव होने से, ये अलोकाकाश में आगे नहीं जा सकते। अपने उद्‌गमस्थल से निकलकर शब्द पर्याय में परिणत हुए प्रदेश में अनन्त पुद्‌गल अवस्थित हैं। किन्तु दूसरे आकाश प्रदेश (abjacent) में उनसे अनन्तगुण हीन पुद्‌गल अवस्थित रहते हैं। तीसरे आकाश प्रदेश में उनसे भी अनन्त गुणाहीन पुद्‌गल अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार एक-एक आकाश प्रदेश को क्रम से स्पर्श व उलंघकर व अनन्त गुणाहीन होते-होते अन्तिम वातवलय पर्यन्त दशों दिशा में जाते हैं। इस प्रकार ये सभी पुद्गल समयान्तर में लोकान्त तक पहुँच जायें, यह नियम नहीं है कि ऐसा आदेश (उपदेश, सिद्धान्त) है कि कितने ही शब्द पुद्‌गल दो समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त काल में लोकान्त को पहुँचते हैं। इस तथ्य से भी वचन (शब्द) का मूर्तिपना सिद्ध होता है कि ये वचन, मूर्त दीवार आदि से टकराकर रोक लिया जाता है तथा बहुत तीव्र शब्द से मन्द दब जाता है।

भौतिक विज्ञान (Physics) के आधार पर ऊर्जा के 5 भेद-ताप , प्रकाश, चुम्बकत्व, विद्युत एवं ध्वनि हैं । यहाँ ध्वनि की प्रासंगिकता होने से, ध्वनि क्या है ? इसकी सरल व्याख्या करते हुए कहा जाता है - ध्वनि , उर्जा का एक रूप है जो श्रोता के कानों में स्पन्दन उत्पन्न करता है। जब कोई पत्थर या कोई भारी पदार्थ स्थिर जल, कूप या तालाब में फेंका जाता है तब जल की स्थिरता में विक्षोम उत्पन्न होकर तरंगें बनती हैं जिनका व्यास निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता हैं तथा दो के टकराव से ध्वनि उत्पन्न होती है और चारों ओर फैल जाती है अर्थात् वस्तु के संघात के कारण निर्मित कंपन (Vibration) से उत्पन्न हुई। यह ध्वनि अन्य प्रकार के संघात (टक्कर), वस्तु के टूटने , खुरचने,रगड़ने, घुमाने, हिलाने आदि से भी उत्पन्न हो सकती है।

ध्वनि ऊर्जा, जिस क्षेत्र में संचार (Propagation) करती है, वह माध्यम (Medium) है। उस समय कम्पन के कारण उत्पत्ति स्थान (ध्वनि के स्रोत) के निकटतम कणों (abjaent particles) पर एक दबाव उत्पन्न होता है जिससे वे स्थिर अवस्था साम्य अवस्था (ground state, equilibrium state) से गति अवस्था को प्राप्त होते हैं। इसके फलस्वरूप वहाँ उच्च दबाव का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। यह संपीडन (Compression) कहलाता है। कम्पन को प्राप्त करना या ऊर्जा का अपने स्रोत पर वापिस आती है, जिससे कम दबाव का क्षेत्र बनता है ,यह अवस्था संकुचन (rarefaction) कहलाती है। कम्पायमान तरंगों के निरन्तर संपीडन व संकुचन के कारण, वह ध्वनि श्रोता के कानों तक पहुँचती रहती है। इस प्रकार बारम्बार संपीडन व संकुचन के कारण, माध्यम के कणों के निरन्तर कम्पायमान होने पर उत्पन्न विक्षोम (disturbance) तरंगों को जन्म देता है अर्थात् गतिमान विक्षोम

(Moving disturbance) ही तरंग हैं। तरंगों का एक रोचक तथ्य यह भी है कि माध्यम में निरन्तर संपीडन व संकुचन (compression and rarefaction) से ध्वनि सुनायी देती है, जो कम दबाव या शून्य अवस्था आने पर (वायुमण्डल दबाव 760 मिमि. से कम होते जाने पर) ध्वनि तरंगें कम सुनायी देती हैं अथवा नहीं भी सुनायी देती। ध्वनि तरंगों को ले जाने वाले कणों को ही जैनाचार्यों ने 'शब्द वर्गणा' कहा है। इस प्रकार के किसी विशेष कारण जो केवल ध्वनि को स्थानान्तरित करता है - विज्ञान में कोई स्पष्ट उल्लेख दृष्टि में नहीं आता, एक विशेष ऊर्जा का परिणिति ही समझायी जाती हैं।

विज्ञान ने यह भी बतलाया है कि सभी तरंगों को माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। जिन तरंगों के संचरण (propagation) के लिये किसी माध्यम-ठोस , द्रव या गैस आदि की आवश्यकता होती है, वे यान्त्रिक(mechanical waves) तरंगें कही जाती हैं जैसे, जल आदि में टकराने से उत्पन्न विस्फोट आदि से उत्पन्न ध्वनि। जिन तरंगों को माध्यम की आवश्यकता नहीं होती , वे विद्युत चुम्बकीय तरंगें (electro magnetic waves) कहलाती हैं। जैसे, प्रकाश तरंगें, रेडियो तरंगें आदि।

यह विशेष दृष्टव्य है कि किसी भी प्रकार की गति के लिये, संचरण के लिये (propagation) माध्यम की आवश्यकता होती है, जिसे एक मात्र जैन दर्शन ने ही सर्वत्र 'धर्मद्रव्य' की सत्ता बतलाकर तथ्य की सयुक्तिक व्याख्या की है। माध्यम के कणों के कम्पन की प्रवृत्ति के आधार पर, ये यान्त्रिक तरंगें (mechanical waves) दो प्रकार की होती हैं -

(1) अनोपृष्ठ तरंगें (Transverse waves)

(2) अनुदैर्ध्य तरंगें (Longitudinal waves)

माध्यम के कण, जिस ध्वनि में , संचरण के लम्बवत् (Perpandicular) गमन करते हैं ,वे अनोपृष्ठ तरंगें (Transverse waves) होती हैं तथा जिस ध्वनि माध्यम के कारण संचरण से दूर गमन करते हैं अर्थात् संपीडन व संकुचन करते हुए कुछ फैल जाते हैं , वे अनुदैर्ध्य तरंगें (Longitudinal waves) होती हैं।

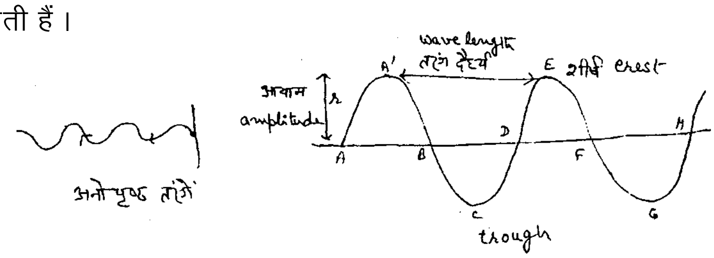

उपरोक्त चित्रानुसार, माध्यम के कण एक निश्चित सीमा A से H में ऊपर शीर्ष (Crest) व नीचे (trough) बनाते हुए कम्पन करते हैं तथा ऊपर या नीचे जाते हैं, वह आयाम (amplitude) है जबकि दो शीर्ष (Crest) या दो (trough) के मध्य की दूरी तरंगदैर्ध्य (wavelength) है। जिसे एक पूर्ण तरंगदैर्ध्य λ से व्यक्त करते हैं तथा कणों की गति में मूलस्थिति से लम्बवत् ऊपर या नीचे की समान किन्तु अधिकतम दूरी को आयाम amplitude कहा जाता है। इस प्रकार एक सेकंड में तरंगों के कम्पन की संख्या को आवृत्ति (frequency) कहा जाता है जिसे ν न्यू (Neu) से व्यक्त करते हैं । इसकी इकाई प्रति सेकण्ड हर्त्ज (Hertz or Hz) होती है। ध्वनि तरंगों का वेग इसी से निर्धारित किया जाता है। जैसे, ध्वनि का वेग वायु में 344 मीटर प्रति सेकण्ड है अर्थात् वायु में कोई ध्वनि एक सेकण्ड में 344 मीटर तक जाती है। इससे यह भी सिद्ध हुआ है कि माध्यम के परिवर्तित होने पर ध्वनि का वेग भी परिवर्तित हो जाता है।

जैसे

पदार्थ	ध्वनि का वेग m/sec.	पदार्थ	ध्वनि का वेग m/sec.
एल्युमिनियम (Al)	6420	शुद्ध जल (Pure Water)	1498
निकिल (Ni)	6040	हाइड्रोजन गैस (H_2)	1339
पीतल (Brass)	4700	वायु (Air)	344
समुद्री जल (Marine water)	1531	ऑक्सीजन (O_2)	330

यदि मार्ग में कोई अवरोध आ जाये या कोई अन्य कारण बने तब ध्वनि का वेग कम या अधिक हो सकता हैं। इसे भी विज्ञानानुसार ये द्रव्य ही है तथा आगे बढ़ने पर वेग कम होते जाने से ध्वनि क्षीण होती जाती है। इन्हीं वैज्ञानिक तथ्यों की जैनागम बहुत पहिले ही व्याख्या कर चुका है। ये शब्द पुद्गल अपने उत्पत्ति प्रदेश से उछलकर दसों दिशाओं अनन्तान्त पुद्गल अवस्थित रहते थें तथा ये आकाश के एक-एक प्रदेश में व्यापाक होती हुई इस प्रकार आगे बढ़ती हैं कि परिवर्तित कुल भाषा वर्गणाओं का अनन्तवाँ भाग उदासीन होकर रुक जाता है तथा इसी क्रम से बढ़ते हुए ध्वनि बढ़ती है तथा क्षीण हो जाती है। इस प्रकार आगमोक्त वचनों की विज्ञान द्वारा भी सिद्धि भी हो जाती है।

इन सभी तथ्यों से एक महत्वपूर्ण पक्ष-इन्द्रियों के विषय की संख्या का मापन करने से प्रकट होता है। आचार्य अमितगति कृत 'योगसार प्राभृत' में मूर्तिक व अमूर्तिक की व्यवस्था का उल्लेख निम्न प्रकार से हैं

'' अमूर्ता निष्क्रिया : सर्वे मूर्तिमन्त्रोऽत्र पुद् गला : ।।
रूप-गन्ध- रस -स्पर्श- व्यवस्था मूर्तिरूच्यते ।।3।।[8]

सभी अजीवों में पुद्गल मूर्तिक है, शेष अमूर्तिक - मूर्तिरहित (अरूपी) और निष्किय-क्रिया विहीन हैं। रूप (वर्ण), रस-गन्ध-स्पर्श की व्यवस्था को मूर्तिक कहते हैं अर्थात् पुद्गल को छोड़कर शेष धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चारों अजीव द्रव्य तथा निष्क्रिय हैं तथा पुद्गल द्रव्य को छोड़कर शेष धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल - ये चारों द्रव्य अजीव तथा निष्क्रिय हैं जबकि पुद्गल द्रव्य को छोड़कर शेष धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चारों द्रव्य अजीव तथा निष्क्रिय हैं। जबकि पुद्गल द्रव्य केवल मूर्तिक व सक्रिय है। मूर्तिक का लक्षण भी दिखाते हुए अपने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की व्यवस्था बनाये रखता है। पुद्गल के भेदात्मक स्वरूप को समझाने के लिए आ. कुन्दकुन्द स्वामी का वचन है।

'' उवभोज्जमिंदिएहिं ये इंदिय काया य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तंमण्णं तं सव्वं पुग्गल जाणे ।।82।।[9]

जो स्पर्शनादिक इन्द्रियों से भोगा जाने वाला-स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण तथा शब्दरूप परिणत विषय, (औदारिक, वैक्रियिक आहार, तैजस तथा कार्माण रूप पाँच प्रकार के) शरीर, द्रव्यमन, द्रव्यकर्म-नोकर्म रूप कर्म और अन्य जो कोई भी मूर्तिक पदार्थ हैं - वे सब पुद्गल हैं।

वर्ण के पाँच -रक्त, पीत, कृष्ण, नील व शुक्ल ; गन्ध के दो - सुगन्ध व दुर्गन्ध ; रस के पाँच-तिक्त(चर्परा), कटु, अम्ल, मधुर व कसैला ; और स्पर्श के आठ-कोमल (मृदु), कठोर, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध व रुक्ष- ये मूल गुण हैं । पुद्गल के इन बीस गुणों से किसी मूर्तिक में कोई एक

वर्ण, एक गन्ध, एक रस तथा शीत-स्निग्ध, शीत-रुक्ष, उष्ण-स्निग्ध व उष्ण-रूक्ष इन चार युगलों में से कोई एक युगल रूप दो स्पर्श कम से कम अवश्य होने ही चाहिये। इसी कारण शुद्ध व सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्था को द्विस्पर्शी संज्ञा दी जाती है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने इसी कारण निर्देश दिया -

'' एयरसवण्णगंध दो फासं ''[10]

अर्थात् - किसी पुद्गल परमाणु में कम से कम 5 गुण अवश्य होने चाहिए।

मूर्तिक व अमूर्तिक - ये किनके विषय बनाते हैं, की व्याख्या के लिये आ. कुन्दकुन्द स्वामी ने दो गाथाएँ दी हैं -

'' आगास काल जीवा धम्माधम्मा य मूत्ति परिहीणा।
मुत्तं पुग्गल दव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥97॥
जेखलु इन्दियगेज्झा विसया, जीवेहिं होंति ते मुत्ता।
सेसं हवदि अमुत्तं, चित्तं उभयं समादियदि ॥99॥[11]

मूर्तिक-अमूर्तिक का लक्षण - जो विषय-पदार्थ जीव से इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होते हैं, वे मूर्तिक तथा शेष अमूर्तिक हैं। विशेषता यह भी कि संख्यात, असंख्यात, अनन्त अणुओं के सूक्ष्म परिगमन से कितनी ही वस्तुएँ तथा पुद्गल वर्गणाएँ इतनी सूक्ष्म हैं कि इन्द्रियगोचर नहीं, परन्तु किसी समय स्थूल परिणमन से इन्द्रियों का विषय बनने की क्षमता रखती है।अत: वर्तमान में इन्द्रिय गोचर न होते हुए भी मूर्तिक ही हैं।

अपनी अतिसूक्ष्म अवस्था में परमाणु इन्द्रियगोचर नही, किन्तु स्थूल धारण करने पर इन्द्रियगोचर हो जाते हैं, अत: परमाणु भी मूर्तिक है। इसी कारण आचार्य उमास्वामी ने **'रूपिण: पुद्गला:'**[12] देकर स्थूल-सूक्ष्म किसी भी अवस्था में पुद्गल को रुपी अर्थात् मूर्तिक ही कहा है।

इसमें से एक अत्यंत रोचक तथ्य और सामने आता है कि जब भी पुद्गल के लक्षण-स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गिने जाते हैं तथा उनके भेद बताये जाते हैं, तब वे केवल संख्या में '20' बताये जाते हैं जो प्रारम्भ की चार इन्द्रियों के ही हैं। पांचवीं कर्णेन्द्रिय के विषयों को नहीं गिना गया ? क्या ये इन्द्रिय नहीं है ? यह अत्यन्त आश्चर्य है। आचार्य उमास्वामी नामकर्म की 42 (व उत्तर भेद से 93) प्रकृतियों के लिये सूत्र देते हैं -

''गति-जाति-शरीरांगोपांग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-सहंनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्या गुरुपघात परद्यातातपोद्योतोच्छवास-विहायोगतय:- प्रत्येक शरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्तिस्थिरादेय-यश:कीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥1॥[13]

इस सूत्र में भी स्पर्शन - रसना, घ्राण व चक्षु इन्द्रियों के स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि 8+5+2+5=20 ही लक्षण भेद किये हैं । श्रोत्रेन्दिय के विषयों का कोई उल्लेख नहीं किया। जबकि दूसरे अध्याय के सूत्र क्रमांक 20 में **'स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तर्था'** कहकर पाँचवी श्रोत्रेन्द्रिय का विषय 'शब्द' उल्लेखित किया है। प्रश्न यह होता है कि नामकर्म की प्रकृतियों की गणना में श्रोत्रेन्द्रिय का विषय क्यों नहीं दिया गया।

इसका समाधान इस प्रकार है कि स्पर्शन, रसना, घ्राण व चक्षु इन्द्रियों के 20 विषय नामकर्म प्रकृति की 42 या 93 उत्तर प्रकृतियों से स्थायी रूप से पाये जाते हैं अर्थात् ये गुण नामकर्म प्रकृतियों के द्रव्य में गुण या स्वभाव रूप में अंकित हो जाते हैं, जबकि 'शब्द' पुद्गल का कोई स्वभाव या गुण नहीं बन पाता, जो 20 प्रकृतियों की भाँति कुछ स्थायी रूप से उसमें पाया जाय जो द्रव्य स्पर्श-रस-

गन्ध-वर्ण के रूप में है, वह ही अंगों व उपांगों के द्वारा, वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से, शब्दों में परिणत हो जाते है तथा फिर श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है। शब्द वर्गणा भी इन्हीं परिस्थितियों में ऊर्जा की सहायता से अल्प काल तक ही शब्दों में परिवर्तित होती है। किन्तु दोनों अवस्थाओं में शब्द धीरे–धीरे आकाश प्रदेश से अगले आकाश प्रदेश में गति करके स्थानान्तरित होते हुए, संघात को प्राप्त होकर उदासीन हो जाते हैं। प्रथम चारों इन्द्रियों के विषयों में यह अवस्था नहीं पायी जाती अर्थात् वे गुण बने रहते हैं। इसी कारण केवल इन्द्रियों के 20 विषय गिनाये गये, किन्तु विशेष परिस्थिति में इन्द्रियों के विषय 20+7=27 भी बताये गये हैं।

भाषा - विज्ञान के आधार पर विवेचन किया जाये, तब उल्लेख आता है कि कोई भी प्राणी जन्म के समय कोई भाषा नहीं जानता, शिशु केवल ध्वनि अर्थात् अभाषात्मक ध्वनियों से अपने भावों की अभिव्यक्ति कर पाता है किन्तु अपने माता-पिता, दादा-दादी, भाई - बहन आदि पारिवारिक या सामाजिक व्यक्तियों के सम्पर्क में निरन्तर रहते हुए, अभ्यास से अपने अंगों व उपांगों का उपयोग करना सीखता है तथा अपने भावों की निश्चित अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा करने लगता है जो किसी निश्चित प्रयोजन व अर्थ के लिये होते हैं, इसी कारण शिशु की कोई जन्मजात भाषा नहीं होती, जैसी व जिन-जिन भाषाओं के सम्पर्क में पलता है, उसी का अभ्यास होने पर, उनका प्रयोग करता है अर्थात् शब्द भावों की, अभ्यास के द्वारा निश्चित अभिव्यंजना करते हैं।

महान् वैयाकरण पाणिनि सहित अन्य दर्शनकारों का मत है कि 'शब्द' आकाश का विषय है किन्तु यह पहिले ही सिद्ध किया जा चुका है कि मूर्तिक शब्द, अमूर्तिक आकार का विषय नहीं हो सकता। शब्द मात्र मूर्तिक पुद्गल की ही पर्याय है। विज्ञान भी 'ध्वनि' को ऊर्जा का एक रूप सिद्ध करता है, जहाँ ऊर्जा का प्रवाहन ध्वनि या शब्द रूप होता है। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि ऊर्जा स्वयं अतिसूक्ष्म कणों का पुंज है किन्तु परस्पर संयुक्त होकर बड़ा कण बनने पर बन्धन ऊर्जा में परिवर्तित होने से, ऊर्जा कम हो जाती है किन्तु निहित उसी में है। इसी आधार पर स्थूल पदार्थ, विखण्डित होकर अतिसूक्ष्म कण बनाने पर, वह संग्रहीत ऊर्जा, अपार ऊर्जा के रूप में मुक्त हो जाती है। आईस्टीन समीकरण $E=mc^2$ से उसे जाना भी जा सकता है। जहाँ

E= मुक्त ऊर्जा (Energy released)

m= द्रव्यमान क्षति (Mass defeet)

c= प्रकाश का वेग (Velocity of light)

ऊर्जा का एक ही रूप होने से, ध्वनि ऊर्जा को उपकरणों की सहायता से विद्युत ऊर्जा में परिणत कर संग्रह कर लिया जाता है तथा चिप्स या डिस्क से अन्य उपकरणों से फिर ध्वनि में परिवर्तित कर लिया जाता है।

प्रत्येक वर्ण की अपनी निश्चित ऊर्जा होती है, जिसके कारण ही किसी भी श्रोता को, उच्चारित हुए शब्द, उसी प्रकार सुनायी देते हैं। इस भिन्न-भिन्न ऊर्जा के आधार पर वैयाकरणों ने ब्राह्मी या देवनागरी या अन्य किसी भी भाषा के वर्ण स्वर व व्यंजनों में एक निश्चित क्रम से व्यवस्थित किये हैं।

सर्वप्रथम सभी वर्गों को 'अच' (स्वर) तथा 'हल्' (व्यंजन) में विभाजित किया। स्वरों में अ से अ: पर्यन्त 'अस्पर्शी' ध्वनियाँ हैं। व्यंजन स्पर्श से प्रस्फुटित होने से 'स्पर्शी' कहलाती हैं। इन स्वरों व व्यंजनों की ध्वनि भेद (phonetic sounds) के आधार पर पुन: निश्चित क्रम से विभाजित किया है।

स्वर -

ह्रस्व - अ इ उ ऋ लृ

दीर्घ -आ ई ऊ ॠ लॄ

मिश्रित - ए ऐ ओ औ

व्यंजन-

ध्वनि आघात	**वर्ग**	**व्यंजन**	**अनुनासिक**
कण्ठीय वर्ग	कवर्ग	क् ख् ग् घ्	ङ्
तालव्य वर्ग	चवर्ग	च् छ ज् झ्	ञ
मूर्धन्य वर्ग	टवर्ग	ट् ठ् ड् ढ्	ण
दन्तय वर्ग	तवर्ग	त् थ् द् ध्	न
ओष्ठ्य वर्ग	पवर्ग	प् फ् ब् भ्	म
आंशिक स्पर्श वर्ग	अन्तस्थ	य् र् ल् व्	
कण्ठ से घर्षण युक्त	उष्म	श् ष् स् ह्	

उदाहरण के लिये 'पवर्ग' के पाँचों वर्णों का उच्चारण ओष्ठों को स्पर्श किये विना हो ही नहीं सकता। तीनों श, ष, स, उष्मा के उच्चारण भी ऊर्जा व उपांगों के सम्यक् उपयोग से शुद्ध बनता है। इसी कारण वैयाकरण ' श' को तालव्य, ' स' को दन्त्य, 'ष' को मूर्घन्य तथा 'ह' को अर्थस्पर्शी अर्थात् आंशिक स्पर्श व आंशिक कण्ठ से कुछ उष्मा उत्पन्न होने से निर्मित वर्ण कहते है।

अर्थात् इन चारों वर्णों के उच्चारण में, कण्ठ से स्पर्श तथा घर्षण से गतिज ऊर्जा उत्पन्न होती है जिससे कुछ ताप भी उत्पन्न होता है, इसी कारण 'उष्म' कहलाते हैं। विज्ञान का सिद्धान्त भी है कि घर्षण व गतिज ऊर्जा , पृथक्–पृथक परमताप के समानुपाती होते हैं ।

सभी तथ्यों के अवलोकन से सिद्ध होता है कि अंगों व उपांगों की सहायता से , वीर्यान्तराय कर्मादि के क्षयोपशम से 'शब्द वर्गणा' अभ्यास से ऊर्जा लेकर, शब्दों में अस्थायी रूप से परिवर्तित होती है तथा कुछ समय उपरान्त अपना प्रभाव दिखाकर , पुद्गल की ही एक पर्याय होने से टकराकर अपना शब्दरूप प्रभाव खो देते हैं तथा स्थिर 'उदासीन शब्द – वर्गणा ' में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी कारण आचार्यों ने स्थायी रूप से इसकी गणना इन्द्रिय विषयों में स्थायी रूप से नहीं की।

षट्खण्डागम की उत्पत्ति में भी आचार्य धरसेन द्वारा मुनिद्वय को बुलाकर तथा परीक्षा करने के लिये मन्त्र दिये, जिन्हें शुद्ध करने पर प्रकट देवी ने आचार्य पुष्पदन्त की क्षत-विक्षत दन्तावली को सुरूप बना दिया था। अन्यथा आगमोक्त वचनों का शुद्ध उच्चारण न हो पाता, उपांग ठीक न होने से। श्रुत के पठन-पाठन, उच्चारण आदि में दोष नहीं होना चाहिए। यह घटना भी इसी सत्य, तथ्य को सिद्ध करती है कि अंग व उपांग से ही शुद्ध शब्दों का निर्माण होता है।

यदि सभी वर्णो की ध्वनि को वक्र (graph) में अंकित किया जाये, तब प्रत्येक वर्ण की रचना व आवृत्ति (frequency) में अन्तर स्पष्ट दिखायी देता है। इन सभी में अभी और गवेषणा व खोज की जा सकती है जो वैज्ञानिकों और विद्वाना का विषय है।

सन्दर्भित ग्रन्थ

1. षट्खण्डागम , आ.पुष्पदन्त व भूतबलि, आ.वीरसेन कृत धवला टीका, पुस्तक 1.13.14 जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर
2. स्वतंत्रता के सूत्र-मोक्षशास्त्र टीका, वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी, दर्शन दर्शन, विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत नईदिल्ली

3. योगसार प्रामृत , आ. अमितगति, भारतीय ज्ञानपीठ, देहली
4. जैनन्द्र सिद्धान्त कोश, क्षु. जिनेन्द्र वर्णी भारतीय ज्ञानपीठ, नईदिल्ली, 1987
5. पंचास्तिकाय, आ.कुन्दकन्द स्वामी, भारतवर्षीय अनेकांत विद्वत् परिषद
6. प्रवचन सार, आ.कुन्दकुन्द स्वामी, टीका आ. कनकनंदी, धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत
7. गोम्मटसार जीवकण्ड, भाग 2, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
8. General Physics, Dr.S.K. Singhal प्रकाश पब्लिकेशन , मुजफ्फरनगर
9. Physics NCERT Publication, S.K. Jain, Srijay Publishers P. Ltd. Delhi
10. Fundamental of Science, R.J.Gupta & A.J. Mittal, Dhanpat Rai Publi. Co. (P) Ltd. New Delhi
11. Science Spectrum, Times of India, Delhi Edition
12. संस्कृत - हिन्दी कोष, श्री वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली
13. प्राचीन पुरालिपिमाला, महामहोपध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताना म्यूजियम, अजमेर, 1918
14. त्रिलोकसार, आ. नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, प्रकाशक, ब्र. लाडमल जैन, शान्ति वीर नगर, श्री महावीरजी
15. तिलोयपण्णत्ती, आ. यतिवृषभ, द्वितीय संस्करण, श्री 1008 चन्द्रप्रभ दि. जैन अतिशय क्षेत्र, तिजारा
16. प्रमेय रत्नमाला श्री मद् अन्तवीर्यकृत टीका
17. Physics Resuish Haliday
18. अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा, आ. कनकनन्दी, धर्मदर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन, बड़ौत/उदयपुर
19. मोक्षशास्त्र टीका, स्वतंत्रता के सूत्र, आ. कनकनंदी, धर्मदर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन, बड़ौत

संदर्भ स्थल -

1. त्रिलोकसार, आ. नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, गाथा 5, पृष्ठ 10, प्रकाशक ब्र. लाडमल, शान्तिवीर नगर, श्री महावीरजी
2. गोम्मटसार जीवकाण्ड, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, गाथा 593, 594, पृ. 822
3. षट्खण्डागम धवला टीका, आ. वीरसेन, पुस्तक-14, गाथा 83, पृ. 61 जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर
4. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा 608, पृ. 854
5. पंचास्तिकाय, गाथा 79, पृष्ठ 222, भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया
6. संस्कृत-हिन्दी कोश, श्री बामन शिवराज आप्टे, पृ-1002, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली
7. धवला 13, गाथा-1, पृ. 222
8. योगसार प्राकृत, आ. अमितगति, छन्द 3, पृष्ठ 38, सं. जुगल किशोर, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
9. पंचास्तिकाय, गाथा 82, पृष्ठ 230
10. वही, गाथा 81, पृष्ठ 228
11. वही, गाथा 97, 99 पृष्ठ 256, 260
12. स्वतंत्रता के सूत्र, टीका मोक्षशास्त्र, आ. कनकनन्दी, सूत्र 5/5, धर्मदर्शन, विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत
13. राजवार्तिक भाग 2, स्वामी अकलंक देव, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

संशोधनोपरान्त प्राप्त : 12.9.2011

वर्ष - 23, अंक - 4, अक्टूबर-दिसम्बर - 2011, 37-43

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

तत्वार्थ सूत्र एवं उसकी टीकाओं में निहित गणित

■ अनुपम जैन * एवं संजय जैन **

सारांश

प्रस्तुत आलेख में जैन परम्परा में संस्कृत भाषा एवं सूत्रात्मक शैली में लिखे गये सर्वप्रथम एवं सर्वमान्य ग्रंथ तत्वार्थ सूत्र तथा उनकी टीकाओं सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, तत्वार्थराजवार्तिक (तत्वार्थवार्तिक) एवं तत्वार्थश्लोकवार्तिक में निहित गणितीय विचारों एवं सूत्रों को संकलित किया गया है।

तत्वार्थ सूत्र एवं उमास्वामी (उमास्वाति) : तत्वार्थ सूत्र संस्कृत भाषा में निबद्ध जैनों का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। किसी भी जैनाचार्य द्वारा संस्कृत भाषा में लिखी गई यह प्रथम रचना है। सूत्रात्मक शैली में जैन धर्म एवं दर्शन के सार को व्यक्त करने वाली इस रचना के रचनाकार , उनके जीवन परिचय आदि के संन्दर्भ में अत्यधिक मतभेद होना निश्चय ही खेदजनक है। इस सूत्र ग्रंथ में 10 अध्याय एवं कुल 357 सूत्र हैं। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार कुल 344 सूत्र है। इन सूत्रों के पाठों में भी यत्र-तत्र दोनों पम्पराओं में मतभेद हैं।

जैन वागंमय के विस्तृत अध्ययन, शिलालेखों के सर्वेक्षण एवं अन्तर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर सूत्र के मूल रचानाकार गृद्धपिच्छाचार्य (अपरनाम उमास्वामी) प्रतीत होते है।[1] महान दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य एवं समन्तभद्र आचार्य के समकालीन उमास्वामी दूसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के विद्वान थे। श्वेताम्बर परम्परा के विद्वान तत्वार्थ सूत्र की एक टीका तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य को मूल सूत्रकार की ही कृति मानते हैं । इस भाष्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति के अनुसार भाष्य के कर्ता वाचक उमास्वाति उच्चानगर शाखा के थे। तत्वार्थ सूत्र के विविध संस्करणों में ही दी गई प्रस्तावनाओं, एतद् विषयक लेखों में दिये गये तर्कों से यह स्पष्ट है कि तत्वार्थ सूत्रकार एवं भाष्यकार दो भिन्न व्यक्ति हैं । मूल सूत्रकार गृद्धपिच्छाचार्य (आचार्य उमास्वामी) का काल द्वितीय शताब्दी है एवं इनका जन्म स्थान कुसुमपुर है।[2]

सर्वार्थसिद्धि :– यह दिगम्बर परम्परा मान्य मूल सूत्र पाठ पर की गई सर्वप्रथम एवं अत्यन्त विस्तृत टीका है। इसकी रचना देवनन्दि (पूज्यपाद) नामक जैनाचार्य ने पाँचवी / छठी शताब्दी ई. में की थी। इस कृति एवं तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य के 17 सूत्रपाठों में मतभेद हैं।यह कृति प्रकाशित हो चुकी है।[3]

तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य :– वाचक उमास्वाति कृत तत्वार्थ सूत्र की यह बहुचर्चित टीका है। गणितीय दृष्टि से तत्वार्थ सूत्र की मात्र इसी टीका का अब तक विधिवत अध्ययन हुआ है। भाष्य के अन्त में उपलब्ध प्रशस्ति के आधार पर इसके रचनाकार उच्चानगर शाखा के श्वेताम्बर जैनाचार्य वाचक उमास्वाति हैं। इसकी माता का नाम वाह्सी एवं पिता का नाम स्वाति था। इनके दीक्षा गुरू, वाचक गुरु एवं वाचक प्रगुरू क्रमशः घोषनन्दि, मूल एवं गुण्डपाद थे। इसी प्रशस्ति के आधार पर इनका जन्म स्थान न्यग्रोधिका है। इसका रचना काल दत्त ने 150 ई. पू. माना है।[4] के.बी. पाठक,

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष-गणित विभाग, शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, ए.बी.रोड़, इन्दौर (म.प्र.)
** गणित विभाग, शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय , ए.बी.रोड़, इन्दौर (म.प्र.)

सतीश चन्द विद्याभूषण आदि इतिहासज्ञ इन्हें प्रथम शताब्दी के अन्त का मानते हैं । सुखलाल संघवी ने अपने विद्वत्तापूर्ण तर्कों के आधार पर उन्हें प्रथम से चौथी शताब्दी के मध्य का माना है । कैलाश चन्द्र सिद्धान्ताचार्य, नेमिचन्द्र शास्त्री आदि विद्वानों ने इन्हें छठी शताब्दी ई. का माना हैं । इन दोनों विद्वानों का इस कृति को इतना अधिक परिवर्ती मानने का आधार छठी शताब्दी के प्रारम्भ की कृति एवं तत्वार्थ सूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि में उपलब्ध कतिपय सूत्रों का इस ग्रंथ के सूत्रों[5] की व्याख्याओं में साम्य हैं ।अर्थ विकास की दृष्टि से भी इन विद्वानों के मतानुसार यह सर्वार्थसिद्धि से परिवर्ती रचना है । वस्तुत : यह विषय अत्यन्त विवादास्पद है ।

यह ग्रंथ गणित इतिहासज्ञ डॉ. हीरालाल रसिकलाल कापड़िया द्वारा विस्तृत प्रस्तावना एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित हो चुका है ।[6]

तत्वार्थराजवार्तिक :– प्रसिद्ध जैन दार्शनिक एवं अपने काल के बहुश्रुत जैनाचार्य भट्ट अकलंक (सातवी आठवीं शताब्दी) की यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है । इसकी रचना में सर्वाथसिद्धि का खुलकर प्रयोग हुआ है । पाठान्तर से कहीं कहीं भाषा का भी उल्लेख मिलता है । यद्यपि इस कृति का गणितीय दृष्टि से अब तक यथेष्ट मूल्यांकन नहीं हुआ है तथापि हमारा विश्वास है कि यह कृति गणितीय दृष्टि से भी पर्याप्त महत्व की है । यह भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है ।[7]

तत्वार्थश्लोकवार्तिक :– दसवी शताब्दी के महान दार्शनिक आचार्य विद्यानन्द द्वारा प्रणीत यह कृति गणितीय दृष्टि से अधिक महत्व की नहीं है । तथापि पठनीय है । इसकी रचना भी तत्वार्थराजवार्तिक के आधार पर की गई है । यह कृति भी प्रकाशित हो चुकी है ।[8]

इसके अतिरिक्त भी कई प्राचीन विद्वानों ने इस पर टीकाएँ लिखी है । आधुनिक युग में प्रो. घासीराम जैन (मेरठ) ने इसके पंचम अध्याय पर वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर विवेचना की है । उनकी यह व्याख्या तत्वार्थ के सूत्रों में निहित वैज्ञानिक चिंतन की परिपक्वता को व्यक्त करती है । Cosmology - Old & New[9] शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित इस कृति में प्राचीन एवं आर्वाचीन वैज्ञानिक मान्यताओं का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । जो लेखक के प्रगाढ़ ज्ञान एवं मौलिक चिंतन को अभिव्यंजित करता है ।

तत्वार्थ सूत्र मूल में भी वलय, वृत्त, विष्कम्भ, क्षेत्रफल आदि ठोस ज्यामिति एवं ज्यामिति के पदों की चर्चा सूत्र रूप में की गई है ।[10] इसके टीका ग्रंथों में इनकी विस्तार पूर्वक चर्चा है । हम यहाँ मुख्यत: तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य एवं तत्वार्थराजवार्तिक के गणित की चर्चा करेंगे ।

तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य में निहित गणितीय सिद्धान्त : तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य में गणित की छ: विभिन्न मापों का वर्णन आया है ।[11]

1. मान	2. उन्मान	3. अवमान
4. गणितमान	5. प्रतिमान	6. तत्प्रतिमान

रेखा आदि के संकेत से जो मान निर्धारित किया जाता है उसे **मान** कहते हैं । जैसे पानी भरने वाले कलशों की गिनती लकीर खींच कर की जाती है ।

तराजू एवं काँटे द्वारा वस्तु का जो प्रमाण ज्ञात किया जाता है उसे **उन्मान** कहते है । जैसे किलो, सेर आदि ।

हाथ की पसों से जो मान ज्ञात किया जाता है उसे अवमान कहते हैं । इसके लिए ऐसा भी लिखा है कि जिस प्रमाण का बाँस आदि से मापा जाये उसे भी **अवमान** कहते है ।

गिनती द्वारा वस्तु का मान ज्ञात करना वस्तु का **गणितमान** कहलाता है। जैसे बकरियों आदि के झुण्ड का प्रमाण गिनती द्वारा ही ज्ञान किया जा सकता है। अत: यह गणितमान कहलाता है।

तोला, माशा, रत्ती द्वारा जो प्रमाण ज्ञात किया जाता है उसे **प्रतिमान** कहते हैं । दूसरी ओर पहलवानों के शरीर की शक्ति को जानवरों के शरीर की अपेक्षा से किसी वस्तु का प्रमाण ज्ञात करना भी **प्रतिमान** कहलाता है। जैसे यदि किसी बोझ को दो बैल खींच सकते हैं तो उसे दो बैलों का बोझ कहेंगे।

घोड़े आदि का मूल्य अन्य वस्तुओं से आंका जाता है तो उसे **तत्प्रतिमान** कहते हैं, दूसरी प्रकार से इसे इस प्रकार बतलाया गया है कि जवाहरात आदि का मूल्य उसकी चमक द्वारा दिया जाता है, जितनी दूर तक उसकी चमक पहुँचेगी उतनी दूर तक स्वर्ण पुंज उसका मूल्य होगा। इसी प्रकार घोड़े आदि का मूल्य उसकी ऊँचाई से आंका जाता है।

अनुयोगद्वार सूत्र में भी प्रमाण की विस्तृत चर्चा मिलती है। वहाँ अवमान हेतु रैखिक माप तथा प्रतिमान हेतु **सुवर्ण भार माप** शब्द आया है। यहाँ पर एक भाग भी अधिक है।[12]

अंक स्थान : तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य[13] में अंक स्थान क्रम की चर्चा की गई है। इसमें वर्णित स्थानों के नाम निम्न प्रकार हैं।

1. अयुत	2. कमल	3. नलिन
4. कुमुद	5. तुडय	6.अडड
7. अवव	8. हाहा	9.हूहू

यहाँ दृष्टव्य है कि अंक स्थानों की यह सूची अन्य आगम ग्रंथों में उपलब्ध अंक स्थानों की सूची, यतिवृषभ कृत तिलोयपण्णत्ती, गणितसारसंग्रह एवं जम्बूदीवपण्णतिसंगहो की सूची से भिन्न है। आगम ग्रंथों की इस सूची से भिन्नता का उल्लेख सिद्धसेन गणि ने भी भाष्य पर रचित अपनी टीका में किया है।[14] उन्होंने लिखा है कि

1. यह उस क्रम में नहीं है जिस क्रम में आगम ग्रंथों में है।
2. इसमें कुछ स्थानों की ही चर्चा है , जबकि पूर्ण सूची निम्न प्रकार है।

01. तुट्यांग	02. तुटित	03. अड्डांग	04. अडड	05. अववांग
06. अवव	07 हुहुवांग	08. हूहू	09. उत्पलांग	10 उत्पल
11. पद्मांग	12. पद्म	13. नलिनांग	14. नलिन	15. अर्थ मयूरांग
16. अर्थ मयूर	17 चूलिकांग	18. चूलिका	19. शीर्ष प्रहेलिकांग	
20. शीर्ष प्रहेलिका				

किन्तु उपरोक्त सूची भी अपूर्ण है। चूलिकांग से ठीक पूर्व अयुतांग, अयुत, नियुतांग , नियुत, प्रयुतांग, प्रयुत यह छ: नाम और होने चाहिये। संभवत : पाण्डुलिपिकार की असावधानी से छूट गये हैं अथवा टीकाकार ने ही भूल की है। इस विषय की ओर डॉ. कापडिया ने भी सिद्धसेनीय टीका सहित तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य की व्याख्या में ध्यान आकृष्ट किया है।

भिन्नों का अपवर्तन :– तत्वार्थाधिगमसूत्राभाष्य के द्वितीय खण्ड के अध्याय 2 में दार्शनिक विषयों की व्याख्या के अंतर्गत उदाहरण रूप में भिन्नों के अपवर्तन की चर्चा है।[15]

डॉ. कापडिया के शब्दों में

This points out that he is familiar with the method of multiplication and that of division as well as by factors, in the oridinory method, operation are carried on the other method operation in the successive stage by factors one after another of the multiplier

and the divisor of course. The final result is same in either case. but the second method is shorter and simpler than the first, It may be remarked in passant, that since Umāsvāti has thus utilized to explain a metaphysical principle ; it must have been very familiary to the intelligentsia of this time.[16]

तत्त्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य में भाग एवं गुणा की साधारण एवं खण्ड पद्धति की विधियाँ बतलाई गयी हैं। भाष्य की सिद्धसेन गणि द्वारा रचित टीका में वर्गमूल निकालने के 2-3 उदाहरण मिलते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण डॉ. अग्रवाल ने दिया है।[17]

ज्यामितीय सूत्र :– भाष्य की गणितीय दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामग्री उसमें निहित ज्यामितीय सूत्र हैं। ये सूत्र इस दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं कि ये किसी प्राचीन गणितीय ग्रंथ से उद्घृत हैं। इससे स्पष्ट है प्राचीन काल में कोई महत्वपूर्ण गणितीय ग्रंथ रहा होगा।

तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य की भाषा में ये सूत्र निम्नवत् है :

विष्कंभ कृतर्दशगुणाया मूलं वृत्तपरिक्षेप :। स विष्कम्भपादभ्यस्यो गणितम्।

इन्छावगाहोनावगाहाभ्यस्तस्य विषकंभस्य चतुर्गुणं मूलं ज्या। ज्याविष्कंभयोर्वर्गविशेषमूलं विष्कंभाच्छोध्यं शेषार्धमिषु :। इषुवर्गस्य भाड्गुणस्य ज्यावर्गयुतस्य मूलं धनु:काष्ठ्म। ज्यावर्गचतुर्भागयुक्त मिषुवर्गमिषुविभक्तं तत् प्रकृति वृत्तविष्कंभ :। उदम्घनु : काष्ठाद् दक्षिण शोध्यं शे नम्नार्ध बाहुरिति। अनन कारणाम्युपायेन सर्वक्षेत्राणां सर्वपर्वतानामायामविष्कंभज्येषु धनु : काष्ठपरिमाणानि ज्ञातव्यानि ''।[18]

यहाँ पर **'वृत्त परिक्षेप '** परिधि के लिये, **'ज्या'** जीवा हेतु, **इषु** उत्क्रमज्या के लिये, **धनु:काष्ठ** चाप के लिये एवं **बाहु त्रिज्या** के लिये प्रयुक्त हुए हैं। यदि

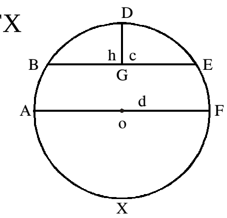

वृत्त की परिधि (Circumference)	-	C = ABDEFX
व्यास (Diameter)	-	d = AF
क्षेत्रफल (Area)	-	A
चाप (अर्द्धवृत्त से कम)	-	a = BDE
जीवा (Chord)	-	c = BE
बाण (Height)	-	h = DG

तो उपरोक्त अंश में निहित सूत्रों को बीजीय रूप से निम्न प्रकार लिख सकते हैं।[19]

$$C = \sqrt{10d^2} \qquad h = \frac{1}{2}\left[d - \sqrt{d^2 - c^2}\right]$$

$$A = \frac{1}{4}C.d \qquad a = \sqrt{6h^2 + c^2}$$

$$c = \sqrt{4h(d-h)} \qquad d = \left[h^2 + \frac{c^2}{4}\right]/h$$

वृत्त की परिधि को दो समानान्तर रेखाओं के मध्य का भाग संगत चापों के अन्तर के आधे के बराबर होता है। यह विषय भी इस ग्रंथ में दिया है। π का जैन परम्परानुमोदित मान $\sqrt{10}$ ही इस ग्रंथ में भी प्रयुक्त हुआ है।

तत्वार्थराजवार्तिक एवं अन्य टीकाओं में निहित गणितीय सिद्धान्त :– सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थराजवार्तिक आदि टीकाओं में काल, क्षेत्र एवं भार माप की सारणियाँ उपलब्ध हैं। राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि से परिवर्ती रचना है फलत: स्वाभाविक रूप से इसका गणितीय चिन्तन सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा परिष्कृत है। सर्वार्थसिद्धि में कालप्रमाण के अन्तर्गत उपमा प्रमाण मान का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है ।[20]

भट्ट अकलंक कृत राजवार्तिक में काल मान की सूची विस्तारपूर्वक मिलती है। इस सूची की विशेषता यह है कि यह तिलोयपणत्ती से भिन्न है। तिलोयपण्णत्ती में प्रत्येक आगामी पद पूर्ववर्ती पद से क्रमश: 84 एवं 8400000 गुना अधिक है ।[21] जबकि राजवार्तिक ग्रंथ में प्रत्येक पद को पूर्व से 8400000 गुना अधिक माना है। जम्बूदीवपण्णत्तिसंगहो में राजवार्तिक का अनुकरण किया गया है। राजवार्तिक की सूची निम्न प्रकार है।

8400000 वर्ष	- 01 पूर्वांग
8400000 पूर्वांग	- 01 पूर्व
8400000 पूर्व	- 01 पर्वांग
8400000 पर्वांग	- 01 पर्व
8400000 पर्व	- 01 नियुतांग
8400000 नियुतांग	- 01 नियुत
8400000 नियुत	- 01 कुमुदांग
8400000 कुमुदांग	- 01 कुमुद
8400000 कुमुद	- 01 पद्मांग
8400000 पद्मांग	- 01 पद्म
8400000 पद्म	- 01 नलिनांग
8400000 नलिनांग	- 01 नलिन
8400000 नलिन	- 01 कमलांग
8400000 कमलांग	- 01 कमल
8400000 कमल	- 01 त्रुटितांग
8400000 त्रुटितांग	- 01 त्रुटित
8400000 त्रुटित	- 01 अटटांग
8400000 अटटांग	- 01 अटट
8400000 अटट	- 01 अममांग
8400000 अममांग	- 01 अमम
8400000 अमम	- 01 हाहांग
8400000 हाहांग	- 01 हा हा
8400000 हा हा	- 01 हू हू अंग
8400000 हू हू अंग	- 01 हू हू
8400000 हू हू	- 01 लतांग
8400000 लतांग	- 01 लता
8400000 लता	- 01 महालतांग
8400000 महालतांग	- 01 महालता

8400000 महालत	- 01 श्री कल्प
8400000 श्री कल्प	- 01 हस्त प्रहेलित
8400000 हस्त प्रहेलित	- 01 अचलात्म

तत्वार्थराजवार्तिक में उपलब्ध उपमा काल प्रमाण का सार जैनेन्द्र सिद्धांत कोश में दिया है[22] जो अत्यन्त स्पष्ट एवं विस्तृत है। इसके अतिरिक्त द्रव्यप्रमाण एवं क्षेत्र प्रमाण की सूचियाँ भी इसी ग्रंथ में संकलित की गई है।अनेक ग्रंथों में ये सूचियाँ न्यूनाधिक परिर्वतनों सहित उपलब्ध हैं। पुनरावृत्ति दोष से बचने के लिये हम इनको सभी जगह से उद्‌धृत नहीं कर रहें है।

Descartes (1637 A.D.) एवं Fermet (1679 A.D.) के समान ही अकलंक (7, 8 वीं शताब्दी) ने उद्‌धृत किया है ' कि चार समय से पहले ही मोड़े वाली गति होती है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जिसमें तीन मोड़े से अधिक मोड़ा लेना पड़े। (Three Dimension) जैसे षाष्ठिक चावल साठ दिन में नियम से पक जाते हैं उसी तरह विग्रह गति भी तीन समय में समाप्त हो जाती है।[23]

जीव एवं पुद्‌गलों की गति के सम्बन्ध में अनेक उलझे प्रश्नों को दार्शनिक पहलू से विवेचित करने का प्रयास अकलंक ने किया है। क्या यह (Point electron) पुद्गल परमाणु आदि से संबंधित उलझे हुए प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत कर सकेंगे ? प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जी ने इस संदर्भ में गहन अनुसंधान की आवश्यकता पर बल दिया है।[24]

गति, प्रकाश, ध्वनि आदि के नियमों की स्फुट जानकारी जहाँ-तहाँ प्राचीन ग्रंथों में मिलती है। राजवार्तिक उनमें प्रमुख है। यह सत्य है कि अब तक प्राप्त तथ्यों के आधार पर हम कोई क्रमबद्ध सिद्धान्त निरूपित नहीं कर सके हैं तथापि यह कहना शायद अभी समयानुकूल न होगा कि राजवार्तिक में प्रयुक्त गणित के सिद्धाँत का कोई समावेश नहीं है। न्यूटन के गति के प्रथम नियम का आशय सर्वार्थसिद्धि एवं राजवार्तिक में उपलब्ध है। राजवार्तिक का विवरण निम्नवत्‌ है।

एवं य: पूर्वकमस्य कर्मणाप्रयोगे जीनत : स क्षोणोडपि कर्माणिगति हेतुर्यवति।[25] अर्थात कर्म रूपी शक्ति से संसारी प्राणी गतिमान हो जाता है , उन शक्ति के समाप्त हो जाने पर भी उत्पन्न गति के कारण (अभ्यायत) प्राणी गतिमान रहता है, जब तक यह संस्कार नष्ट नहीं हो जाता है।

पुन : आगे लिखा है कि :–

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मवोमकार :।[26]

अर्थात गतिमान पदार्थों की गति में और स्थिर पदार्थों की स्थिति में निमित्त बनना सहायता करना क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी प्रदार्थ का किसी खास दशा में रहने या न रहने का कारण बाह्य कारण (External force) हुआ करता है।

इसी पुस्तक के चतुर्थ अध्याय में देवों की गतियों का वर्णन है। इसके अंश से स्थितिज ऊर्जा के भाव की अभिव्यंजना होती है। इस प्रकरण[27] का आशय निम्न प्रकार है।

(कुछ देवता ऐसे भी है) जिनकी गति का विषय भूत क्षेत्र तीसरी पृथ्वी से अधिक है। (आगम में इस पृथ्वी के अलावा भी पृथ्वी की कल्पना है) वे गमन शक्ति के रहते हुए भी वहाँ तक गमन नहीं करते हैं। न पूर्व काल में कभी किया है और न भविष्य में कभी करेंगे। उनकी गति को बतलाने का अर्थ केवल उनकी कार्यक्षमता बतलाना है। उनकी शक्ति का व्यय नहीं होता, वह कार्य रूप में परिणत नहीं होती है। पर वे उतना काम कर सकते हैं।

इस विवेचन से इन ग्रथों में प्रकीर्ण गणितीय विचारों का बोध होता है।

संदर्भ :–

1. श्रवणबेलगोला शिलालेख, संख्या 40,42,47,50, 105, 108
2. पं. कैलाशचन्द 'सिद्धान्ताचार्य', तत्वार्थसूत्र की प्रस्तावना
3. सर्वार्थसिद्धि, आ. पूज्यपाद, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1955
4. B.B. Datta, Jaina School of Mathematics B.C.M.S. (Calcutta), 29 (1929) : p- 115-134
5. गाथा 1/26 भाष्य तथा 1/27 सर्वार्थसिद्धि
6. Tatvārthādhigama Sūtra Bhāṣya - Gaikeod oriental series, 2 vol, Baroda, 1935
7. तत्वार्थराजवार्तिक, 2 भाग, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली I-1953, II 1957
8. तत्वार्थश्लोकवार्तिक, सं- मनोहरलाल शास्त्री, माण्डवी- बम्बई, 1918
9. Cosmology, Old & New, By G.R. Jain-Bhartiya Jñānapiṭha-Delhi-1974 (IInd ed.)
10. मुकुटबिहारीलाल अग्रवाल, गणित एवं ज्योतिष के विकास में जैनाचार्यों का योगदान, शोधप्रबंध, आगरा वि.वि. आगरा, 1972, पृष्ठ 58,60
11. अनुपम जैन, अर्धमागधी साहित्य में गणित, जैन विश्व भारती वि.वि., लाडनूँ, 2008
12. अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र 3/3, पृ. 227, ब्यावर संस्करण
13. तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, सूत्र-15, पृष्ठ 293
14. Tatvārthādhigama sūtra bhāṣya with Siddha seniya commentory Baroda, 1935 P-293,294
15. तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य 2/52
16. H.R. Kapadia, Introduction Tatvārthādhigama Bhāṣya, P. 40-45
17. मुकुट बिहारीलाल अग्रवाल, गणित एवं ज्योतिष के विकास में जैनाचार्यों को योगदान, पृष्ठ 62
18. तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, सूत्र 3/71 के बाद उद्धृत
19. ये सभी सूत्र उमास्वाति की एक अन्य कृति जम्बूद्वीपसमास में भी उपलब्ध हैं।
20. सर्वार्थसिद्धि - भारतीय ज्ञानपीठ - काशी 3/8/233/5 (अ/सू/पृ/)
21. डॉ. अनुपम जैन, गणित के विकास में जैनाचार्यों का योगदान, शोधप्रबंध, मेरठ वि.वि., मेरठ, 1990
22. जैनेन्द्र सिद्धांत कोष, भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली , 1974, पृष्ठ 215-217
23. तत्वार्थराजवार्तिक, 2-28-1
24. लक्ष्मीचन्द्र जैन -तिलोयपण्णत्ती का गणित -पृष्ठ-7, पर इस संदर्भ में चर्चा है। शोध दिशाओं को व्यक्त करने वाले अन्य लेखों में इसकी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चर्चा है।
25. तत्वार्थराजवार्तिक, अध्याय -4, सूत्र-6
26. तत्वार्थसूत्र, अध्याय -5, सूत्र-17
27. तत्वार्थराजवार्तिक, अध्याय -4, सूत्र -22

संशोधनोपरान्त प्राप्त : 14.09.11

लेखकों हेतु संदेश

1. अर्हत् वचन में जैन धर्म/दर्शन के वैज्ञानिक पक्ष तथा जैन इतिहास एवं पुरातत्व से सम्बन्धित मौलिक, शोधपूर्ण एवं सर्वेक्षणात्मक आलेखों को प्रकाशित किया जाता है।
2. शोध की गुणात्मकता एवं मौलिकता के संरक्षण हेतु दो प्राध्यापकों अथवा पारम्परिक विषय विशेषज्ञों से परीक्षित करा लेने के उपरान्त ही आलेख अर्हत् वचन में प्रकाशित किये जाते हैं।
3. शोध आलेखों के अतिरिक्त संक्षिप्त टिप्पणियाँ, अकादमिक संगोष्ठियों/सम्मेलनों की सूचनाएँ/आख्याएँ, आलेख एवं पुस्तक समीक्षाएँ भी प्रकाशित की जाती हैं।
4. अर्हत् वचन में प्रकाशित किये जाने वाले समस्त लेख इस अपेक्षा से प्रकाशित किये जाते हैं कि वे न तो पूर्व प्रकाशित हैं एवं न अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित हैं। यदि पूर्व प्रेषित कोई लेख अन्यत्र प्रकाशित हो चुका है तो माननीय लेखकों को इसकी सूचना हमें तत्काल अवश्य भेजनी चाहिये।
5. लेखकगण यदि पुस्तक या लेख से सन्दर्भ ग्रहण करते हैं तो उन्हें सम्बद्ध लेख/पुस्तक का पूर्ण सन्दर्भ देना चाहिये । यथा लेख का शीर्षक, प्रकाशित करने वाली पत्रिका का नाम प्रकाशन स्थल, वर्ष, अंक, पृष्ठ संख्या अथवा पुस्तक का नाम, लेखक, प्रकाशक, संस्करण, प्रकाशन वर्ष, आवश्यकतानुसार अध्याय, गाथा, पृष्ठ संख्या आदि। उदाहरणार्थ :-

   समान सन्दर्भ की पुनरावृत्ति होने पर बाद में संक्षिप्त नाम प्रयोग में लाया जा सकता हैं।
6. लेखकगण अपने आलेख की दो प्रतियाँ टंकित एक पृष्ठीय सारांश सहित भेजने का कष्ट करें। प्रथम पृष्ठ पर लेख का शीर्षक, लेखक/लेखकों के नाम एवं पत्राचार के पूर्ण पते होने चाहिये। अन्दर के पृष्ठों पर लेखक/लेखकों के नाम न दें। **कृपया हिन्दी के आलेख एम.एस वर्ड में देवलिश फोन्ट में टाइप करके फोन्ट सहित सी.डी. में भी भेजेंगे तो प्रकाशन में सुविधा रहेगी एवं प्रकाशन शीघ्र होगा। कृपया लेख की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें वापस भेजना संभव नहीं है।**
7. लेख के साथ लेख के मौलिक एवं अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र अवश्य संलग्न करें एवं अर्हत् वचन में प्रकाशन के निर्णय होने तक अन्यत्र प्रकाशनार्थ न भेजें।

डॉ. अनुपम जैन

सम्पादक - अर्हत्‌वचन

584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,

इन्दौर - 452001

फोन : 0731-2545421, 2797790

E-mail: anupamjain3@rediffmail.com

अर्हत् वचन में समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकों को पुस्तकालय में रखा जाता है। जिन पुस्तकों की 2 प्रतियाँ प्राप्त होती है उनमें से चयन करके 01 प्रति समीक्षक को भेजी जाती है। पत्रिका की विषय परिधि के अनुरुप होने पर एवं समीक्षक से समीक्षा प्राप्त होने पर समीक्षा प्रकाशित की जाती है। सभी की समीक्षा प्रकाशित करना संभव नहीं है।

Vol. - 23, Issue 4, October - December, 2011, 45-50

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indorer

Mind Reading through Mind Mapping in Jainism

■ **Samani Chaitya Pragya***

ABSTRACT

Mysteries of mind are never completely revealed, To read others mind is one of the toughest jobs. The present study is dedicated to reveal methods and techniques that can be help us to read other's mind. It amalgamates modern technological techniques with that of spiritual advancement that can lead to the identification and analysis of mental processes and also condtions that occurs in others mental world. It concludes that manah paryāya is state of spiritual develoment through which one can scan the maps of other mental substances (mindomes) and can easily read them through inference .

Reading a mind seems to be really mysterious. One can only infer about others state of mind. To read or infer the state of mind of a being, objective mapping of mind required that can give a structure for the subjective analysis. This means reading others mind on more mechanical and unbiased grounds. It is not an impossible task for spiritually advanced soul.

Of course modern mechanical development has also brought in light such valuable tests as MRI (Magnetic Resource Imaging), in which a sophisticated software system called Computerized Tomography converts radio signals in three dimentional, PET (Positron Emission Topography) and Electro encephalo graphy (EEG) have been quite successful in mapping and to figure out the mental states of a being. Such a kind of figuring—out is possible through advanced picture of any part of the body, functional MRI, PET, Yet spirituality holds its own importance.

Reading others mind is possible even through advanced spiritual development. Jain epistemology discusses about five kinds of cogniition, out of which the fourth is a state of spiritual development, by which one directly reads maps of other's mind.[1] These maps which a mind reader cognizes are material in nature. Thus it is possible for a cognizer to figure out, analyze those figures and infer the exact state of mind of a thinker. In order to dive into the deeper concepts of mind reading and mind mapping, we will have to get to know about mind and thought process from the Jaina point of view.

* Assistant Professor, Department of Jainology and Comparitive Religion and Philosophy, Jain Vishva Bharati, Ladnun-341306 Rajasthan

From Jain point of view mind is an independent entity from that of a consciousness. It is also known as quasi-sense, as it is dependent on senses. The object of mind is not fixed as senses. It is capable of apprehending objects of all the sense organs, of all the periods of time. Like senses mind is divided into two varieties the physical mind (*dravya Mana*) and psychical mind (Bhāva mana). The physical mind is material, constituted of Manovarganā. It occupies the whole body. The Digambar (Jains) admit the heart as its abode; and of the shape of lotus with eight petals. The psychical mind (bhāvamana) is the power or activity of the self, resulting into various states of mental actions, this is mode of soul and so beyond the reach of imperfect (ordinary) cognition.

Jaina epistemology explains about three kinds of direct cogniition out of which the second is known *manaḥparyāya jñāna*. It is been translated thought reading[2] and more commonly as mind reading[3]. *Manahparyāyajñāna* or Mind reading is a unique contribution of Jain Philosophy to the Indian thought. It is also called as *manaḥparyava* or *manaḥparyaya*. The terms paryava and paryaya express the sense of thought reading, Paryāya means modes of mind and the cognition of these modes of mind is called *manaḥparyya jñāna* as quoted in *Viśeśāvaśyaka Bhāṣya*. The Text runs as follows :

"pajjavāṇaṃ pajjayaṃ pajjāvo vā ṇāṇammi maṇaso vā tassa vā pajjādiṇṇāṃ manpajjvam nāṇaṃ'[4]

*"M*ind reading is to cognize state or mode or states or modes of mind"

Mind reading is also been defined by Acārya Tulsi as

"manodravyaparyāya Prakāśi manaḥparyayaḥ."[5]

"Mind reading is the revealer of modes of mental substance.

Thus in simple terms it can be said *manaḥparyāya* is the cognition of objects thought of or contemplated by others. It uses the mind of others to know the objects being thought by them. Objects thought earlier or are being thought, or shall be thought in future can be the subject of manaḥparyāya jñāna, In other Indian philosophies too, as in Buddhism and yoga school, such kind of knowledge or cognitiion is possible as *Majjhimnikāya* of *Suttapīṭaka*[6] describes certain rules of conduct to be observed by Bhikkhu if he desires some accomplishments, natural as well as supernatural. Amongst the supernatural powers the cognition of all *varieies* of mind is also referred but it does not indicate the objects conserved by the mind as the subject-matter of that cognition.

In yoga philosophy too, it is explained that one can know of other's mind by concentrating on one's mental activities. As one can know one's own mind one can also know about other's mental conditions. Such a kind of cogniition is known as "*parcitta jñāna*" he can know about the mental conditions and various emotions of him, i.e. anger greed etc. but cannot trace out the object of anger and the like.

A kind of mind reading is also been explained through Para-psychology. The concept of Telepathy is quite similar to that of mind reading because through Telepathy one can get in to contact, with other's mind where the person who is been contacted may remain totally unware. Dr. Baina in his book "Anatomy of Modern Science" opines that there is some medium through which one can enter into other's mental life. The cogniition, which cannot be acquired by thought can be known through mental projections. But this concept of telepathy cannot be equated with Jaina concept of mind reading. The uniqueness in concept of mind reading lies in procedure of it. Mind reading is niether just a concept itself and nor too subjective. It is rather more reliable and abiased cognition as it involves objective scanning or mapping of the mental states.

Until recently the mechanizations that give rise to our thoughts memories feelings and perceptions were impossible to examine directly. Their nature could only be inferred by observing their effects. Now however new imaging techniques make the internal world of mind visible much as x-rays reveal our bones. As we enter the twenty—first century functional brain scanning machine are opening up the territory of mind rather as the first ocean-going ships once opened up the globe.[7] The challenge of mapping mind locating precise brain activity that creates specific experiences and behavioural responses is currently engaging some of the finest scientists in the world. These discoveries in a way that will make them comprehensible even to those with no cogniition of specific interest in science.

There are differences of opinion amongst Jain scholars as to the process of mind reading. All agree that cognition of mental modes is direct by soul but differ on the cognition of the object being thought. Pūjyapāda, Akalṁka, and their followers regard it to be direct. On the other hand Jinabhadra and his followers are of the opinion that cognition of the object thought is known through inference. This process of mind reading through mind mapping, through spiritual attainment as Jinabhadra explains Manahparyaya apprehends or scans different modes of mental substance i.e. mental structure is quite interesting. This makes the knower to conceive the cognized objects. According to Jinabhadra Manaḥparyāya apprehends different modes of mental substance directly, i.e. mental structure. The objects conceived are not cognized here. But later on inferred by Mati Jñāna (infernce) as depicted in the following verse

"Muṇai maṇodavvāim naraloe so maṇijjamāṇāiṁ,
Kāle bhūya bhavisse paliyāsamkkhijjabhāgammi
davvamaṇpajjae jāṇai pāsai ya taggaeṇante
teṇāvabhā se uṇa jāṇei bajjhaṇmāṇeṇaṁ."[8]

Is such kind scanning or mapping of mind is possible?

It is possible because Jaina Philosophy admits two kinds of minds namely physical mind (dravya mana) and psychical mind (bhāva mana). The physical mind is a material composition made of molecules of Manovargaṇā. A material

aggregate related to mind. It occupies the whole body. The Digambaras admit the heart as its abode and of the shape of a lotus with eight petals.[9] In simpler words the substantial or physical mind is nothing but substantive matter transformed into mental substance. The physical mind changes and takes various forms according to the impressions. Every idea puts some mark on it. some times it is very intense and some times not. The intensed ones may be so deep that they are visible on outer surface also.[10] The face of angry man is reddened. His body trembles when the feeling not so intense or the though is merely of the nature of cognition. It is not externally visible. But it cannot escape from the physical mind; which catches the impression of every idea and feeling however feeble it may be. Thus physical mind in Jain philosophy is the interface for converting psychic mind's knowledge for use by material body and its components. Psychical mind however is mode of the soul in the state of deliberation. It is immaterial like soul and so beyond reach of Manah paryavajñāna.[11]

According Mahābandha and Dhavalā. Mind reading is cognition of another's desire (jamina) memory (Smṛti) Intellect (Mati), Deliberation (Cintā), Life (Jīvita), Death (Maraṇa), Gain (Lābha), Loss (Albha), Pleasure (Sukha), Pain (Dukha) the destruction of city (Nagarvināśa) the destruction of district (Deśavinaśa) the destruction of a province (rājya apavimsa) etc. This accounts makes the distinction Avadhi and Manahparyāya in signification.[12]

We have to decide whether Manaḥparyaya by nature, is a direct cognition or indirect one. By direct, we do not mean here subjective directness or independence from assistance of senses, but the objective presentation or direct apprehension. If it is a direct cognition we must confine its sphere of objectivity to physical mind only. Conceived ideas of prychic mind on no account can be presented directly. If it is indirect we must admit the conceived ideas as its object. The question of the object being material substance does not arise in this case. We can know the soul and other immaterial substances through inference i.e. indirectly.[13]

Since *manaḥparyāya* is an extrordinary capability, developed by higher order of ascetics, accompanied the spiritual purity, it is enumerated in the eight powers *(labdhis)* through yoga. The *Majjhim nikāya* proposes that if a bhikkhu desires to know others mind, he should be completely obsessive to the rules of conduct *(śīla)* restraint from sensual pleasures *(Śamana)*. Concentration and cognizance *(vipaśyanā)* and should stay in deserted houses. These practices are not particular for attaining the power of thought-reading only but, general conditions for all sorts of supernatural powers. Patanjali also describes the physical powers produced by the practice of yoga he states that by concentration on mind of other person one is able to know his mind. The object conceived by that mind is not perceived, because that is not the object of concentration.[14]

Manaḥ Paryaya is divided into two types

1. *Ṛjumati* and

2. *Vipulamati*.

Ṛjumati knows the present thoughts and thieir objects in general and simple terms only. It is further classified into mind, body, and speech. It can disappear also after its origination.

Vipulamati knows complete details of the thoughts and their objects of a person with complicated mind also. It knows all thoughts of past, present, future as well as those partially thought.

The difference between the two is not of quality but that of degree. Vipulamati apprehends the objects more minutely than ṛjumati Secondly, it is infallible while the latter is subject to fall or disappearance.[15] Jina bhadra holds *ṛjumati* and *vipulamati* differ from each other in respect of subject matter also. ṛjumati apprehends an object in its simple form *vipulamati* cognizes the same with more particulars for instance, in apprehension of a mind one can know the cause of thought by *vipulamati manaḥparyaya*.

In terms of modern psychology we can say that ṛjumati is competent to apprehend the conscious mind only *Vipulamati* is competent to map subconscious and unconscious mind also. The question is how the physical mind is perceived. It is beyond the reach of senses therefore. If its function is confined to the conceived objects there is no cognition to perceive the mind substance. The alternative that it can be left unperceived also is unthinkable. Because without the perfection of physical mind the conceived ideas cannot be cognized. *Akalaṁka* explains away this difficulty by accepting the mind substance also as the object of *Manaḥparyāya* in its first stage, the subsequent stage being the cognition of conceived objects. One is direct, while the other is indirect but both constitute one cognition.[16] But the present proves that the process of Jinabhadra seems to be more scientific as it is based on mapping of the objects and then inferring about them.

Therefore it can be concluded that the concept of *Mahaḥparyāya jñāna* or mind reading of Jainism possess in itself a unique explanation. The uniqueness of mind reading from other philosophical school lies in the process of reading mind. It holds that reading other mind is not only subjectively done but constitutes objective mapping as explained by Jinabhadra. Thus the process of mind reading can be traced as follows :

* The thinker thinks of an object.

* The mental substance of thinker takes the form of an object i.e. it produces objective maps.

* The reader cognizes the maps or figures of mental substance of thinker.

* Depending on the details of mental substance, the reader infers about the object thought by the thinker.

Thus mind reading in Jainism is not just a subjective analysis of other's ex-pressions, rather it methodically occurs through the analysis of the objective mapping of the mental states of others.

Reference :

i. Nandi, ed by Acarya Mahaprajna Jainkishva Bharati Institute, Ladnum 1997, 2.23-25 "ṇāṇaṃ pañcavihaṃ paṇṇattaṃ, taṃ jahā- ābhiṇibohiyaṇāṇaṃ, suyaṇāṇaṃ, ohiṇāṇaṃ, maṇapajjavaṇāṇaṃ, kevalaṇāṇaṃ //"

ii. Indra Chandra Shastri, *Jain Epistemology*, ed. by Sagarmal Jain, Parshwanāth Vidyashram Sodha.Sansthan, Varanāsi, 1990, P. 350.

iii. *Jain Siddhanta Dipika* of Acharya Tulsi as Illuminator of Jainatenets, trans. by Prof. Satkarimukerji, JV.B., Ladnun, 1995, 2.29.

iv. *Viśeśāvaśyaka Bhāṣya*, of Jinabhadragaṇi with Vṛtti of Hemachandra Suri, Part-2, Divvya darshan Trust Mumbai, 1983, Vir. 52509. G. 813.

v. *Jain Siddhānta Dīpika*, 2.32.

vi. mahāniddesa of Majjhimnikāya of Suttapīṭaka of Majjhimnikāya, 1.323 Paracitta jñānena..

vii. Rita Carter, *Mapping the mind*, Phoenix, London, 2003, p. 1.

viii. Viśeśāvaśyaka Bhāṣya, G. 814.

ix. I.C. Shastri Jain Epistemology, P. 249.

x. Ibid, p.451.

xi. Ibid. p.350.

xii. Mahābandha, p. 64.

xiii. I.C. Shastri Jain Epistemology, p.355.

xiv. Ibid, p.352.

xv. Tattvārtha Sūtra, 1.24-25.

xvi. I.C. Shastri Jain Epistemology, P. 350.

Received : 21.12.09

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

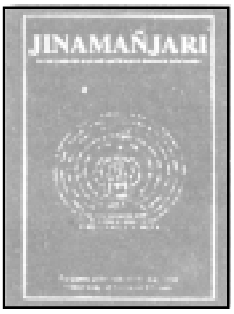

JINAMANJARI

Editor - Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar
Periodicity - Bi-annual (April & October)
Publisher - **Brahmi Society, Canada U.S.A.**
Contact - Dr. S.A. Bhuvanedra Kumar
4665, Moccasin Trail,
MISSISSAUGA, ONTARIO
CANADA - 14Z2W5

Vol. - 23, Issue 4, October-December 2011, 51-65

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indore

Jain Dualism-2 : Fields and Interactions

■ **Narayan Lal Kachhara***

ABSTRACT

This second part of the article on Jain Dualism deals with the interactions between the soul, mind consisting of karma body, tejas body and conscious mind, and the gross material body. Interactions between different components of the system are described and explanations offered based on Jain principles and scientific findings. Effects of neuro-electromagnetic fields and faith healing processes are also discussed.

1. *Vargṇā* (Energy Fields)

Jain philosophy proclaims that the fundamental constituent of the physical order of existence is energy and paramāṇu is its ultimate smallest unit. The jain *paramāṇu*, the real quantum of energy, is far too small than photon, the quantum of energy, known to science. *Vargṇā* is a cluster of a large number, generally infinite, of *paramāṇus*. *Vargṇās* are classified on the basis of number of *paramāṇus* (in a range) in the cluster. Though the clusters could be of infinite types depending on the number of *paramāṇus*, twenty-three main types of *vargṇās* have been recognized. Each type has a range of number of *paramāṇus*. These *vargṇās* broadly fall in two groups.

1. Mass less *vargṇās* (4 touch) - first thirteen types of *vargṇās* belong to this group. The *paramāṇus* in these *vargṇās* are in unbound state.
2. *Varganas* having mass (8-touch)- the last ten types belong to this category. The *paramāṇus* in these *vargṇās* are bonded, and bonding is supposed to produce the mass.

Because of charge the *paramāṇu* and the *vargṇā* could be visualized as fields. These *vargṇā* fields are physical and each field has a frequency range. The nature and character of each *vargṇā* field would be different due to variation in the number of *paramāṇus* in the vargṇās. All kinds of *vargṇās* are present in the whole cosmos. The penetrating power and maximum velocity of *vargṇā* is highest in the case of a single *paramāṇu vargṇā* and they decrease with increase in number of *paramāṇus* in the *vargṇā*. A single *paramāṇu* moving freely can pass though all objects like planets and stars uninterrupted and it has a velocity large enough to cross the entire cosmos in almost no time. The velocity of mass less *vargṇās* is also supposed to be much greater than the velocity of light. The sun light is 8-touch *vargṇā* having mass. The biggest *vargṇā* of mass category is supposed to produce all the visible matter and their constituent atoms and sub

* 55, Ravindranagar, Udaipur (Rajasthan)

atomic particles, in the cosmos. The three mass less *vargṇā* of our particular interest are

1. Tejas (Luminous) *vargṇā*. This *vargṇā* constitutes the prana body of organisms.
2. Mano (Mind) *vargṇā*. This *vargṇā* constitutes the conscious mind of organism.
3. Karman *vargṇā*. This *vargṇā* constitutes the karma body of organisms.

The *vargṇās* can be compared to Morphic fields of Rupert Sheldrake. Each type of *vargṇā* makes up a specific type of field having a particular application. For each field there is a wide range of frequency and for each frequency the charge of *paramāṇu* can vary over a wide range. The above three *vargṇās* constitute the subtle body of living organisms.

2. Interactions between Bodies

2.1 Karma body

The karma body is made of karman *vargṇā*. The process of formation of karma is the most important phenomenon in the life of an organism. Each and every organism in this universe, from the most under developed organism like virus (or even smaller organisms that may exist) to the highly developed organism like human beings, has a karma body. The karma body is a dynamic structure having a regular input of karma *vargṇā* and exit of karma, which have matured. The inflow of karman *vargṇā* is caused by resonance phenomena. The soul experiences vibrations due to activity involving attachment and aversion attributes. The attachment and aversion attributes are in a way related to the instinctual desires and needs like food, fear, sex, possessiveness, anger, ego, deceit and greed in all organisms and also to the thought activity in higher organisms. The vibrations depend on the type of activity, each activity is associated with a particular kind of vibration having a definite frequency and intensity, the intensity is related to the intensity of action. The vibration in the soul (non-physical) induces vibrations in the karma body, which experiences vibrations of the same type that is the karma body vibrates at a particular frequency. The vibrating karma body attracts karman vargnas of the same frequency from the cosmos due to the phenomenon of resonance. These incoming *vargṇās* get bonded with the similar karma present in the karma body due to the force of activities of body, speech and mind and the passions that originated vibrations in the soul. Thus new karmas are formed in the karma body. These karmas are of various kinds depending on the nature of the source activity but here we limit to two broad categories of karma, the psychical karma and the physiological karma, which fundamentally differ in their characteristic. The psychical karmas impose limits on the powers of the soul so that an inherently infinitely powerful soul explicitly experiences only a tiny fraction of his power

in the mundane state. The actual power expressed depends on the development of consciousness of the soul; it is least expressed in virus like organisms and highly expressed in human beings. The psychical karma, though not essential for the existence of the material body, have a definite role in development of consciousness. These karmas are retained by the soul up to a certain stage of development (in human body) and then gradually dropped by intentional efforts in order to proceed towards liberation. The physiological karma on the other hand are essential for having a material body, they are fully dropped just before liberation so that the soul becomes free of body.

The bond duration may be short (say, minutes, hours, days, and weeks), medium (say, months, years) and long up to thousands of years. It is assumed that the short and medium duration karmas are enjoyed in the present life and the long-term karmas are carried forward to the next life or further. The bonded karma lasts in a dormant state in the karma body for a certain period during which it does not exercise any operational influence on the soul except limiting its powers. After the expiry of the bonding period the karma becomes active and causes the karma body to vibrate. The vibration waves emitting out of karma body are known as adhyavasaya. We have adhyavasaya of different kinds depending on the nature of maturing karma but we shall, as before, restrict to two kinds, the psychical adhyavasaya and physiological adhyavasaya. It was mentioned earlier that the soul is divided in innumerable parts, called pradesas. Karmas bond uniformly on each pradesa so that each predesa has all the Karmas. Karma contains information record typical of the activity causing it. So the total and identical information about the past activities of the soul is available on each pradesa. For the convenience of explanation let us assume that the number of pradesa of the soul is equal to, or some multiple of, the number of cells in the body in the grown up state. All the pradesa emit adhyavasaya waves of the same kind at any instant. The karma body is seen to contain the features of a hologram; every part of it contains total and identical information.

2.2 Tejas Body

Besides karma body the soul also has a tejas or luminous body, a part of which discharges the function of prana body. The prana body is composed of another field made up of Tejas *vargṇā*. The prana body is actuated by some physiological adhyavasaya, so that it draws tejas *vargṇā* from the cosmos, by the process of resonance, and transmits them to every cell of the material body. The supply of subtle energy through tejas *vargṇā* is regarded essential for functioning of the cells, in the absence of prana the material body is dead. The functioning of prana body is also connected to the breathing process, interruption in prana supply stops breathing. Breathing, like prana body, is also controlled by physiological adhyavasaya.

2.3 Physiological Karma and Material Body

A part of physiological adhyavasaya directly interacts with cells of the body and regulates the physiological activity. All cell activities, right from the stage of zygote, to growth of structure, formation of organs, parts and various physiological systems, the overall growth and structure, development and maintenance of the body, disorders and malfunctioning of organs and parts, etc are controlled and regulated by physiological karma. These karmas provide a blue print according to which the body is designed and formed. The particular karma responsible for this activity is called body-making karma. These karmas decide the type of body to be made, that is the species-specific body, and all the features of that body

The interaction of physiological adhyavasaya with the brain enables the brain to control the autonomic functions without the involvement of conscious mind. How physiological karma acquires this capability of designing and constructing the body requires the knowledge of doctrine of karma. The physiological karma can be compared to morphogenetic field, the biologists are advocating. Like karma the morphogenetic fields are individual to every organism. These fields are, of course, derived by the organism from karma *vargṇā* field in the cosmos. Thus there is a general field existing in the cosmos from which the organisms derive their part and construct their own individual field for personal use. It may be noted that the soul has the central role in construction of individual field; the soul provides the life force without which no life activity is possible.

It is now well established that all living systems emit a weak light current, which is different form sunlight, of some photons called bio photons. These bio photons are supposed to trigger the biochemical reactions and regulate the whole biochemistry in a living system. The bio photons are assumed to originate from a coherent electromagnetic field in broadband of frequencies from infrared to the ultraviolet. This field may act as both sender and receiver of the bio photon that are electro magnetic bio-information used in regulating life processes. Many significant correlations between features of the weak biological light and a number of fundamental biological processes, such as cell division, death, and major shifts in metabolism exist. The bio photon is supposed to be trapped and remitted by DNA. The bio photons can be regarded as general physiological karma and the morphogenetic fields as particular karma fields (sub fields) responsible for design and formation of individual parts, organs and systems.

There are millions of reactions in a cell per second and the bio photons emitted by physiological karma, a coherent field, provide the right quantum of energies at the right place and right time. There are trillions of cells in the body, which apart from individual functioning, must coordinate and regulate their activities to enable the body to function as an integrated whole. One of the

consequences of coherence is the ability of communication at all levels within cells, between cells and between organisms capable of resonating to the same frequency. There exists an information super highway in our body which makes a real time inter and intra-cell communication possible and the cells, collection of cells in the form of tissues, parts, organs, sub-systems and systems are able to function individually and in coordination with each other in an organized meaningful manner. In addition to this the brain processes the information received from the conscious mind and the body. The brain works with frequencies, it is able to translate the avalanche of frequencies it receives via the senses (light frequencies, sound frequencies, and so on) into the concrete world of our perception. This is possible by holographic action, which functions like a translating device able to convert an apparently meaningless blur of frequencies into coherent image of our perception. Imagine the magnitude of intelligence required for this mammoth task. No super computer in the world can even compare with the brain (alone), the functioning of the whole body is far beyond our imagination. What is the source of this mind-boggling level of intelligence (except the soul)?

Biological Systems are governed by the special interactions of a coherent electromagnetic field (bio photons) and biological matter. There is a permanent feedback coupling between field and matter in a way that the field directs the locations and activity of matter, while matter provides the boundary conditions of the field. Since the field is almost fully coherent, the interference patterns of the field contain the necessary information about the regulatory function. The interference patterns of bio photons originating from the resonance tuning between the coherent field and biological matter (preferentially DNA) govern the availability of energy in a concerted action of the whole.

We recollect that a soul pradesa (or n identical pradesa) matches with the location of every cell, which means that adhyavasaya are emitted locally for each cell. The functions assigned to bio photons compare with the function the physiological adhyavasaya perform and therefore the two concepts are seen to describe the same aspect of reality. Both adhyavasayaa and biophotons are found in all organisms including plants and vegetation. The discovery of bio photons indirectly proves the existence of karma body.

A cell consists of two parts, cytoplasm and nucleus, the cell functions only when both are present; the cytoplasm cannot function without the nucleus. This is because the nucleus is just not DNA structure, as is generally believed, it also contains a field counterpart representing karma. It is the karma field that regulates the functioning of DNA and the cell. DNA differentiates between species, and yet there is not a large difference between DNA of various organisms. Difference in DNA alone is not sufficient to explain the difference between species. For example, mice and humans (and most mammals) have roughly the same number

of nucleotides in their genomes- about 3 billion base pairs. It means that the basic building block, the brick, is similar in mice and humans, yet a different type of building, the body, is constructed. Scientists explain the difference by gene logic but who decides this logic? Is it not the instructions contained in bio photons emitted by physiological karma field? The building plan is indeed contained in the physiological karma according to which the building is constructed using the DNA brick. Of course, the brick should also be of right quality for the type of building to be constructed. For instance, the DNA of E-coli can only construct a rudimentary hut, a simple body, and for constructing a palace of human body an improved brick, developed genome, is necessary.

The Russian biophysicist and molecular biologist Pjotr Garjajev and his colleagues exposed the vibration behavior of the DNA. They found that living chromosomes function just like solitonic/holographic computers using the endogenous DNA laser radiation. They worked on devices that can influence the cellular metabolism through suitable modulated radio and light frequencies and thus repair genetic defects. DNA is also an organic superconductor that can work at normal body temperature. All superconductors are able to store light and thus information. This is further explanation of how DNA can store information. We can see that the vibrations of adhyavasaya waves emitted by physiological karma contain the instructions that cause changes in DNA through gene logic.

2.4 Psychical Karma, Conscious Mind and Brain

We now consider the function of psychical karma. As per Jain philosophy karma continues to operate on maturity and exercises its influence for some time. It means that adhyavasaya waves from a particular karma continue to emit for a certain length of time. There are two end uses of psychical adhyavasaya, (1) they interact with conscious mind and (2) they may interact directly with the brain. The conscious mind is composed of yet another field made of Mano *vargṇā*. The existence of conscious mind itself is determined by psychical karma, it exists, only in higher organisms having brain. As stated earlier the conscious mind stores information collected in this life but at any given time we are conscious of only a part of it. It is assumed that the remaining part of information may also be recalled with some effort. This is in contrast with the information recorded in Karma body, the unconscious mind that cannot be recollected by conscious effort. The conscious mind does not contain the information of previous lives like karman body. The psychical adhyavasaya waves interact with the conscious mind, and produce a new kind of waves called lesya. These lesya waves interact with different body systems. Their interaction with endocrine glands produces hormones, which are known to regulate the bio-chemical activity in cells. Interaction of lesya with brain initiates and regulates the information processing activity in two steps. One, the relevant information data are transferred from

conscious mind to brain and two, this information is processed along with the information available in the brain from the body. The brain has an electric field. The information from the conscious mind is supposed to transfer to the brain by the process of resonance, when the two fields, conscious mind and brain, excite at the same frequency due to thought activity or stimulation of brain field by demands of the body. This is only a preliminary assessment of the processes going on in the brain and conscious mind and further investigation are necessary to uncover and open out the secretes of the subtle part of our existence.

Any thought activity is a joint operation of both the conscious mind and the brain. Measurements on the brain represent only a part of the mental thought process. The hidden part of conscious mind may be much more than the role-played by the brain. So interpretations of mental processes based on brain measurements alone are not only incomplete they may also lead to erroneous inferences, e.g. the brain produces consciousness. The materialists must know this fact before making their claims.

Is the information stored in mind or brain or both? We know that in the scientific methods of information storage, hardware as well as an electromagnetic means is required in some way. The hardware and the electromagnetic medium together make it possible to store information. The same can be assumed to be true in organisms. The brain is the hardware and its electric field and the conscious mind provide the electro magnetic media to complete the storage system. This system can not only store but also process information at the instance of the soul via adhyavasaya. None of the individual component of this system can either store or process information. The information storage in the karma body, unconscious mind, is made on the principle of hologram and it is of different kind. A hologram can store immense amount of memory, one cubic centimeter of holographic film can held as many as 10 billion bits of information. A hologram is capable of encoding and decoding frequencies; a function that is assigned to karma body and it is because of this that organisms perceive the world according to Karl Pribram. The holographic memory is carried forward by the soul during transmigration from one body to another but the conscious memory is lost on brain death.

The conscious mind is connected to breathing. When the conscious mind is in agitated state the rate of breathing is high and when the conscious mind is calm the rate breathing is low. Every one experiences such conditions, for instance in a state of anger the mind is agitated and the breathing rate is high. The breathing rate is low and the mind is at rest while sleeping. The opposite is also true; by controlling the rate of breathing the state of conscious mind can be changed. The breathing exercises known as pranayama are potent methods to train the conscious mind. For the breathing process is linked to prana body, the prana body is coupled to conscious mind. This is why the conscious mind and prana

body are described as part of tejas body, although they have independent functions. Depending on the state of conscious mind the prana body supplies the requisite amount of energy to enable the material body to function in the designed way. The conscious mind and prana body are intimately connected and mutually influence each other. The conscious mind can be controlled by operation of prana body through exercises of pranayama. On the other hand full benefits of pranayama are derived when the conscious mind is kept in control during such exercises. The conscious mind and prana body pair to form a working unit like husband and wife, who also maintain individual identity and independent role.

The function of conscious mind is linked to the neuron activity in the brain. A developed conscious mind means higher neuron activity and a large mind field. The field of conscious mind must coincide with the nervous system. There are other fields, the karma field of the karma body, the prana field of prana body and the thermal field due to thermal emissions from the material body. All the three fields must extend the entire length of material body. The prana field is also known as etheric field. The field of conscious mind may be supposed to consist of two parts, the astral field and mental field. The karma field can be compared to the causal field. The composite field constitutes the aura of the organism. The size of the aura is mainly determined by the conscious mind, it is large in pious souls and still larger in spiritually advanced personalities. The colour composition of aura reflects the thoughts and emotions, which are described by lesya.

The transmission of information through adhyavasaya and lesya is in two ways, information can flow from the karma body to material body or to conscious mind or vice versa, and from conscious mind to material body and vice versa. This flow of information makes the system an integrated whole. The karma on the expiry of maturity period is not immediately dislodged but it can wait up to a certain period for a suitable occasion to arise. For example in case of physiological karma, the activities of body, mind and speech present suitable occasions for the mature physiological karmas to become active. If we overeat or eat or drink something that is not fit for consumption, or enter into a state of anger, or emotionally interact with some one, the corresponding physiological karma which are waiting after maturity (or sometimes even the premature karma) rise and show their influence which we experience as reaction to our actions. On the expiry of the waiting period the matured karmas will either necessarily show their influence or be elimenated without giving fruits depending on our action. In the former case we experience some unexpected event to which we are unable to assign any reason. The later possibility holds when we exercise care and restraint in our actions and conduct and do not react to unfavourable states.

The system of unconscious mind and conscious mind also works in a united way. The adhyavasaya from waiting karma depends on our thought activity; they tend to be of the same type as our thoughts. The resulting lesya shall exhibit the corresponding effect in our body and brain. Thus we tend to become what we think. There is a reinforcing effect of our thinking on our psychology, which is shaped accordingly. As before, the waiting matured psychological karma can either show some unexpected effects or get dislodged without giving fruit depending on our way of thinking. A positive thinking saves us from undesired consequences and a negative thinking may produce unexpected reactions. To fully understand the psychology we have to be thorough with the doctrine of karma.

What is the relation between unconscious mind and conscious mind? It appears that the holographic unconscious mind contains all the memories, the memories of the past lives as well as the memories of this life, in the form of karma. What exactly is karma, is it a detailed memory record or record of some abstraction of memory typical of the event, is not known with certainty. There may also be a difference in the way the physiological and psychical records are stored. The physiological records that regulate the body physiology are purely unconscious, we do not consciously know the activities going on in the cells and the processes going on in the body, The soul maintains and manages the body unconsciously leaving the conscious mind completely free to deal with the external world. The conscious mind has not to worry about the operation of the body except when it comes to interaction between the body and the external environment. The conscious mind tends to protect the body from external effects; the internal working is not its responsibility.

The main responsibility of the conscious mind is to look after the psychic functions, including our conduct, behavior, thinking, imagining, planning, taking decisions, etc based on internal inputs from the karma body (psychical) and external stimuli received through senses. The brain is the place where the information is processed. The body through the brain executes the decisions taken by conscious mind. Both the brain and body must have the ability to carry out the functions directed by conscious mind; in case of disability in any one of them the conscious mind becomes helpless. The conscious mind does not allow access to psychical karma, its mentor, in the normal conditions. But if the conscious mind can be silenced, access to psychical karma is possible. But even in this case the physiological karma are perhaps not accessed and we cannot change the working of the body and thus adversely affect our own existence. Changes in the body do take place on reduction of psychical karma but the conscious mind has no role in it.

Besides interacting with the external world the conscious mind can also be directed inwards to explore the secrets of our subtle existence. Usually this

requires withdrawing attention from the outer world, may be temporarily, and concentrating on the inner world of the self. If this can be done the dividends are very rich and one discovers that the source of stable peace and happiness is within, the external world provides only temporary pleasure. The more and longer you concentrate on the inner self the more is the peace and happiness you derive so much so that at some stage you may like to completely withdraw from the external world, which now becomes meaningless for you.

The soul also interacts with the conscious mind directly in a limited way. The soul has the power to act independent of karma (parinamik bhava) and exercise its freedom of decision-making. One part of the faculty of discrimination and decision-making possessed by the conscious mind may be directly linked to the soul. But generally the instinctually biased desires prevail and we neglect the voice of the soul and the conscious mind decides in favor of attractions that satisfy our attachment and aversion tendencies. However, a person of strong will can follow his inner voice and go contrary to luring attractions of conscious mind and pursue the spiritual call.

Can karma be eliminated before maturity? The answer is yes, but it is not simple. The karmas are fixed deposit of the soul and can be terminated only with his signature. For this one has to have access to the soul. The conscious mind and the material body are nominees of the soul and can receive the benefit only after maturity, they cannot terminate the deposit. To have an access to the soul one has to rise above the conscious mind and material body and this requires meditation on the soul through ascetic way of life. This is the field of spiritual development and has been dealt with in detail in Jain philosophy.

2.5 Conscious Mind and Material Body

The interaction between conscious mind and body is also very important. The material body ultimately consists of pudgal *paramāṇu*, whose independent existence has been recognized by Jain philosophy. The *paramāṇus* possess their properties and powers and can act independent of the soul. So the body and its systems can have some capability of independent working, which is mainly controlled by the brain. The brain is directly linked to conscious mind. It is for this reason that our thoughts have a great bearing on the state of the body. Right and positive thoughts are conducive to good health and wrong and negative thoughts adversely affect our health. There is enough experimental evidence to suggest that religious and spiritual life style lead to better health. Both psychology and medical science have explored this area in detail. The process taking place in body is subjected to the properties of the material they are made of.

2.6 Cosmic Consciousness

Carl Jung proposed the existence of collective unconscious (Freud did not accept this idea). Jung divided the unconscious into two very unequal levels:

the more superficial personal, and the deeper collective, unconscious. The collective unconscious is universal and predates the individual. It is the repository of all the religious, spiritual, and mythological symbols and experiences. From our point of view both the unconscious are included in the psychical Karma, which also predate the present form. Some thinkers have interpreted the collective unconscious as a kind of "Universal Mind" or metaphysical reality, which is not correct.

Rupert Sheldrake applied the idea of morphic fields to explain the existence of group mind or group field in the coordination of collective animal behaviour. Some kind of "collective behaviour" has also been observed in humans by social psychologists, behaviour of crowds, football hooligans, rioting mobs, and lyndring mobs are some examples.

Jain philosophy (Bhagwati canon) describes 10 instincts in organisms. Eight of these were mentioned earlier; these instincts are impulsive and are the consequence of karma. All instincts represent tendency of the soul to interact with the outside world under the influence of karma, this appears to be a natural property of the soul, but it is not so. The other two instincts, mass mentality (loka samjna) and cosmic consciousness (ogha samjna) are beyond karma and originate deeper in the consciousness. The mass mentality has been described as a personal consciousness signifying the individual characteristic and traditional wisdom, which is inherited from parents and earlier generations, and is expressed when performing in a group like a crowd. The mass mentality is seen in ants as moving in a line, in bees as obeying the queen, in birds as flying in formation, etc. The cosmic consciousness on the other hand is group consciousness that connects the individual to a group or cosmos and determines his behaviour. For example a creeper climbs a support or some animals and birds run for a safe shelter on sensing an earthquake. This type of knowledge is neither sensual nor mental; it is an independent expression of the soul that is natural and not conscious based. In both these cases some kind of connectivity between souls or between soul and cosmos is involved and for this to happen the *vargṇā* fields (morphic fields) may have a role. Vargṇā fields provide a medium for instantaneous connection between unconscious minds through which the soul communicates and responds in an extra-ordinary way that is beyond the capacity of conscious mind. The same instinct should also be the cause of telepathy observed in organisms in various ways. For instance, some dogs have been found to have prior knowledge of home coming of their masters, and some people can guess what their contacts at far away distances are thinking, etc. Such instances of knowledge are, however, instinctual and are different from direct perceptions by the soul, a capability which is attained by ascetics on spiritual advancement.

The cosmic consciousness exists in all organisms but it is more prominently expressed in lower organisms or in higher organisms having less developed conscious mind. In humans the activity of conscious mind acts as a noise against which the weak signals coming from other sources or souls are not captured. If the conscious mind is calm there is no reason for not receiving those weak signals and sensing the events, which lower organisms do.

3. Neuro-Electromagnetic Fields

Michael A. Persinger, a neuropsychologist, and Todd Murphy explored the application of neuro-electromagnetic fields to brain. They rigged up a motorcycle helmet with electromagnets and directed electromagnetic energy to specified parts of the subject's brain. The subjects often have spiritual and religious reactions, especially mystical feelings of being in the presence of God, triggered by the energy fields. Persinger found that, by varying the frequency and intensity of the electromagnetic pulses, a unitive state with the universe could be elicited as well as a sensed presence of God. The sense, which a person makes out of the experience, depends on how it is interpreted; and that interpretation is based on one's earlier experiences. Both Persinger and Todd Murphy explained such experiences with the help of operation of the brain and the background of the subject.

Let us analyze the above experiences in the light of our model. We know that memories of this life are stored in conscious mind and the memories of the past life exist in the unconscious mind. Excitation of brain by electromagnetic means at a certain frequency induces similar excitation in the conscious mind by resonance. The memory stored at that frequency (and intensity) is activated and the subject becomes conscious of the same. If the excitation frequency matches with some memory fields of unconscious mind, the memory of previous births in the unconscious mind relating to that field may also be activated and be transferred to conscious mind through adhyavasaya. The subject then becomes conscious of that part of his past. This experience lasts for the period of excitation only, the subject returns to his earlier state on removal of the excitation field. Such an experience is not likely to be an organized one and the subject may not be conscious of one particular event but a combination of many events, making the experience a concocted story. The experiments show that the connection between conscious mind and brain is location specific; by exciting different parts of the brain different memory in the conscious mind is activated.

4 Faith Healing

Another important area, which requires explanation, is faith healing. Some representative examples of faith healing are.

1. Randolph Byrd studied 393 patients admitted to the coronary-care unit of San Francisco General Hospital. Some were prayed for by home-prayer groups,

others were not. All the man and women got medical care. In this randomized, double blind study, neither the doctors and neither nurses nor the patients knew who would be the object of prayer. The result, were dramatic and surprised many scientists. Men and women whose medical was supplemented with prayer needed fewer drugs and spent less time on ventilators. They also fared better overall than their counterparts who received medical care but nothing more.

2. In a survey of 131 controlled experiments on spiritual healing, it was found that prayed for rye grass grew faster, prayed for yeast resisted the toxic effects of cyanide, prayed - for - test tube bacterial grew faster.

3. At the 'Mind Science Foundation' in San Antonio, Texas, researchers took blood samples from 32 volunteers, isolated their red blood cells (RBCS) and placed the samples in a room on the other side of the building. Then the researchers placed the RBCs in a solution designed to swell and burst them, a process that can be measured extremely accurately. Next the researchers asked the volunteers to pray for the preservation of some of the RBCs. The praying significantly slowed the swelling and bursting of the RBCs.

4. In another study at the Mind Science Foundation, volunteers in a room on one side of the building were asked to visualize volunteers in a room on the other side of the building becoming calmer or more agitated. Mean while, the "receivers" were hooked up to bio feed back- type equipment to gauge their reactions. The result showed that the "influences" exerted a statistically significant effect on the receiver's moods.

All above and other similar cases, including the effects of starring at objects tried by Rupert Sheldrake, can be explained on the basis of cosmic consciousness. The sender soul transmits thought waves through *vargṇā* fields, which are directed towards a particular soul or a group of souls at a given location far or near. The target soul receives them if tuned to the frequency of transmitted waves. The receiving soul shall experience the effect of the message contained in the waves if his mental state is in favourable condition. If the mental state of the receiver is not in a favourable condition he/she may not experience the effect even if the waves are received. A sick person is generally mindful of his sickness and his mental state is in a favourable condition. A healthy person may be pre occupied with some other thoughts and his mental state may or may not be in favourable state. So the chances of a sick person getting benefited by prayers are more than that of a healthy person. Prayers may not affect mentally strong persons. Spiritually advanced persons who are awake may receive the message and be aware of it but may not experience any effect as their mental states are free of worldly consideration which is normally the subject matter of prayer messages. In any case, the effects of prayers and other similar intentional efforts can be explained only by taking soul into consideration. Without this the matter is like enjoying a play and forgetting the actor. It is the soul that has cosmic

consciousness and receives the message of other souls; the field is the physical medium of transmission of message.

6. Conclusions

The doctrine of karma based on the direct experience of omniscient explains the secrets of our existence. It presents the truths that are experienced by every living organism. The doctrine states that the organisms exist at two levels, a gross level in the form of material body and a subtle level in the form of fields. The functioning of the material body cannot be fully explained without consideration of the subtle fields. Every cell of the body has a subtle counterpart, which is the medium of manifestation of the soul. The cell and its constituent part like DNA are indeed very complex structures, but their operation is not independent, it depends heavily on the flow of information from the subtle counterpart. The advancements in life sciences have provided minute details of the material body and have also revealed its limitations. It is now clear that the functioning of a complex system like a cell is possible only with the help of some source of intelligence, the soul. Not only the physiological structure and operation of the body but also the conduct and behavior of the living organism is guided by the subtle fields. The diversity in organisms can be easily ascribed to subtle fields of karma. Variation in karma makes every individual, rather every organism, a unique specimen. The advancements in science have enabled us to appreciate how the doctrine of karma operates scientifically. The scientific evidence is now mounting to validate the various tenets of the doctrine.

Further understanding of our existence will depend on study of the subtle part. Science has a long way to go to acquire this capability. It would be discovered in due course that the subtle counterpart is much more powerful than the gross part of our existence. By controlling the subtle part abilities like clairvoyance and telepathy, among many others, could be achieved. But this is not the ultimate aim of life. As we go deep in the subtle world we would realize that although it is the place of many physical powers, it really limits the powers of the soul, which is infinite. To invoke the powers of the soul is the path of spirituality, which cannot be traversed by physical means. Spiritual powers are far more superior to physical powers and are likely to attract the attention of the scientists of future, so much so that science may merge with spirituality. Spirituality can reveal the absolute truths whereas science can only provide the relative truths. A truth seeker is likely to give up science and pursue spirituality, give up the lure of physical powers and take resort in the powers of the spirit. The full powers of the spirit can be realized not with the physical bodies, including the subtle, but without them. On getting rid of all the bodies the soul experiences unlimited bliss, the ultimate and purest state where all the desires have come to an end. The science then looses its existence, the absolute truth prevails.

7. References

1. "Vargṇā Vigyan", Narayan Lal Kachhara, Arhat Vacana, Oct-Dec, 2008
2. Morphic field- Wikipedia, the free encyclopedia
3. "Jaina Doctrine of Karma". N.L.Kachhara, 2005
4. Morphogenetic fields, Wikipedia, the free encyclopedia
5. "Some Features of Biophotons and their Interpretation in terms of Coherent States", Fritz-Albert Popp, International Institute of Biophysics
6. "Biophysical Aspects of the Psychic Situations", Fritz-Albert Popp, International Institute of Biophysics
7. "DNA, Design and the Origin of Life", Charles B. Taxton
8. "Spiritual Science: DNA is influenced by words and frequencies", Grazyra Fosar and Franz Bludorf
9. "Spirituality and Science: The Holographic Universe", Michael Talbot
10. Collective Unconscious- Wikipedia, the free encyclopedia
11. Jung's Conception of Collective Unconscious
12. http://www.sheldrake.org
    Part I- Mind, Memory, and Archtype Morphic Resonance and the Collective Unconscious
    Part II- Society, Spirit & Ritual: Morphic Resonance and the Collective Unconscious
    Part III- Extended Mind, Power, & Prayer: Morphic Resonance and the Collective Unconscious
13. "Jain Tattwa Vidya", Acharya Tulasi, Adarsh Sahitya Sangh, 2000
14. Neuro-Electromagnetic Fields by John A Speyrer
15. Faith Healing through Prayers, Here Now 4U News Letter on web

Received : 31.12.10

प्राकृत तीर्थ

प्राकृत अध्ययन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक : प्रो. प्रेमसुमन जैन

प्रकाशक : राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान
बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ
श्री धवलतीर्थ, श्रवणबेलगोला-573135

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धति द्वारा वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। इससे जैन विद्याओं के शोध में रुचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय की स्थापना की गई है। गत वर्ष डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल के प्रयासों से पुस्तकालय भवन का विस्तार एवं हजारों दुर्लभ पुस्तकों का संकलन जोड़ा गया है। 15.09.2011 तक पुस्तकालय में 30973 महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं 731 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। इसके अतिरिक्त हमारी सहयोगी संस्था अमर ग्रंथालय में 1010 पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 300 पत्र – पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।

आपसे अनुरोध है कि –

संस्थाओं से : **1.** अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 – 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : **2.** अपनी कृतियों की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। पुस्तकालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में भी उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर भी दिये जायेंगे।

जैन पांडुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी निर्माण परियोजना तथा राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन के तहत म.प्र. के जैन शास्त्र भंडारों में संगृहीत पांडुलिपियों की जानकारी भी यहाँ उपलब्ध हैं।

डॉ. अजितकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

30.06.2011

Vol. - 23, Issue 4, October - December, 2011, 67-74

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indorer

Dynamisation of Water (Fundamental of potency making)

■ Jeoraj Jain*

ABSTRACT

In Homeopathy, water based remedies were prepared in laboratories by sequential dilution of the remedy with pure water. The effectiveness of the remedy increases with the increase in potency number. As per Avogadro's number, a remedy of 12th potency may not even contain any molecule of the remedy! The Ostwald's theory of ultradilutions is also inadequate of explain the increase in effectiveness of remedies at higher potencies or dynamisation level. Then how does this Homeopathy work?

By considering water as a <u>living-being</u> with capability to store energy and carry memory-imprints (as proved earlier), the author has put forward a <u>theory of characterization</u> of water cells in Homeopathy. During sequential dilutions, the IMV (the Initial Mode of Vibrations) of each cell gets reinforced further. As such the dynamisation goes on increasing the effectiveness of the remedy.

Introduction

The investigations done so far (Ref. 1 & 2) and the deductions made in these two articles, -reveal that

1) Water does Exist <u>as Living beings</u> in form of nano net like cells. It can be made non-living mass by conducting certain operations like boiling on it.
2) Living water can carry and transfer its acquired properties and memory to other similar well defined clusters of water cells; even though they do not have the traditional DNA, RNA or TNA chemicals in it .The properties are transcripted on the special energy field surrounding the <u>nano net-like</u> cell structure of water.
3) Modern <u>Imaging Techniques</u> may reveal various aspects of this interesting phenomenon. "Aura" photography is the simplest of various methods, which has been utilized to unearth some basic traits of it.

<u>Further Study of Dynamisation Process</u>

A) Nomenclature

01) Suffixes of Energy E without brackets denote <u>Type of Energy,</u>
02) Sufixes of Energy E with brackets denote <u>Type of Water</u> or its content.

* 40, Kamani Centre, 2nd Floor, Bistupur, Jamshedpur - 831 001

Type of Energy (without brackets)

t = total, g = good, b = bad, p = pranik, d = disciplined

E = Aural Energy Quantity, e.g. E_p = Prānik Energy

The function of E_p is to increase the density of energy Ed, as well as the Eg, EA = Total

Type of Water (in brackets)

t = tap, b=boiled, d=-distilled,, h–dynamised, dw=dead component of water, li = live content of water, o/r = oxy radicals of water, X = homeopathic remedy of X potency, Mi= Mineral component of water, XX=High potency of 10M

e.g. $E_{(x)}$=Energy of X remedy

$Eg_{(dw)}$ would mean good energy of dead boiled water (it may contain energy of pure dead water and energy of Mi, if any)

E_t = Total quantum of energy value (just like 'mass')

EA = Area enveloping the energy field (equivalent to surface area of volume of energy field)

B) Study of Effects of Dynamisation:-

01) In the previous articles, we have studied the effect of various operations on water by way of Aura photography. The result of thi.- study can further be interpolated and applied for scientific study of "potency-making", in I lomeopathy. (Ref. 1, 2, 3)

02). We have seen that Energy Area EA (may decrease by application of Pranik discipline E_p. E_P increases by dynamisation, i.e. by energizing its live-content.

Also aura of Boiled Water = static aura of dead water = $E_{(b)}$ or $E_{(dw)}$. It contains $E_{(Mi)}$ also.

When the boiled water starts becoming live, $Et = E_{(li)} + E_{(b)}$, where $E_{(li)}$ is differential energy added by water living-beings in dead water.

Distilled live water may have energy $E_{(d)} = E_{(b)'} + E_{(li)} - E_{(o/r)}$ - ---- ---- ---- (1)

where, $E_{(b)'} = E_{(b)} - E_{(Mi)}$ = energy of dead water.

But its area goes on decreasing by dynamisation. The energy of dynamised water can be expressed as

$E_d = E_P + E_{(b)'} + E_{(li)} - E_{(o/r)}$

$E_p + E_{(li)} - E_{(o/r)} + E_{(b)} - E_{(Mi)}$ ---- ---- ---- ---- ---- ---- ---- ---- ---- --- (2)

$E_{(x)} = E_{(b)'} + E_{(li)} - E_{(o/r)} + E_{(p)} = E_{(d)}$

E_d = disciplined energy, after absorption of E_p by $E_{(li)}$

Distilled water aura $E_{(b)'}$ gets surrounded by HF (high frequency) energy pulses, when it becomes live. EA depends on its scattering or better called discipline/ /randomness. See Fig. 1

It is observed that by dynamisation, discipline increases, but 'A' decreases due to reduction in scattering.

The HF pulses actually get smoothened by dynamisation. See Fig. 2.

03) In Mehta's Mode:-

E_t = Total energy (sum of co-existing good and bad energies, represented by EA).

If E_g is a part of EA (Total Area of scattered aura energy)

E_g< EA (i.e. if aura is 14, E_g may be, say 8)
Normally, EA should have components like E_g, E_b, E_n, E_P etc.
EA = $E_g + E_b + E_n + E_P$, where E_n and E_P may be neutral or pranik energy from cosmos, which reduces the energy area by enforcing disciplining act, like a Centripetal force.

C. Observations Recapitulated (Ref 2 & 3)

Shah's scattering in energy field is not seen in Mehta's foto, because of its different technique. Mehta's colored rings are continuous rings, merging one into other. It does not contain peaks, valleys or comets etc on the outer rings! (Fig. 3)

01). Revelations in Shah's Fotos:-

Shah has given information about E_t (area) and symmetry of content or its density.

(a) Area of Energy field (Fig 4)

EA is not a measure of energy value, because this value depends on the density of energy, packed in this area. Boiling operation rarefies the energy in this area.(Fig. 4)
Parmanus packed /unit space is density. Hence total Parmanus packed= Area x density.
It can also be represented as shown in fig 5. by keeping no. of dots (parmanus / wavicles) constant. (Ref. 4,5)
Densely packed (Area is reduced) means the density is increased. Fig. 5a, 5b

b) Symmetry

Note the Symmetry in Shah's Foto (fig. 6) for comparison of LH with Right hand side Aura. It does not give any idea of the nature of it's contents ie, E_g or E_b or E_d or E_P, as well as their quantity.,

02) In Mehta's photos, only ratio of E_b and E_g is noted/observed (Fig.7).
Here no information is available; whether

a) E_t is changing or not?
b) E_d or E_P is present (may be in some other colour or not?)
c) When E_t changes, E_g & E_b may change in different ratio
d) Mehta may not give idea about energy-density
e) It also does not give any idea about Symmetry

Result:- By comparison, it can be inferred that

i) E_t may change by change of ($E_b + E_g$) components
ii) E_t may change by change in density of $E_b + E_g$.

D). Effect of $E_{(o/r)}$ in various samples :-

01) Energy of radicals is treated as negative energy (-) $E_{(o/r)}$ It is subtracted in shah's mode to arrive at net energy of that water sample! However in Mehta's mode, it is observed that good & bad energies coexist around the body and both of them jointly form the "area of aura energy". Fig. 8

02) During 'sanskar' operation ----total energy-area goes on decreasing because of higher density of aura energy field due to disciplinary action of pranik energy (Ref. 1,4,6).

When "dynamisation" is done, then the density of 'energy lines' increases in shah's mode, (Ref 1), thereby reducing the "energy-area".

It also increases the symmetry of the field (sample X and XX).

03) $E_{(o/r)}$ remain same for both X and XX homeo-remedies.

In tap water $E_g = 0$ (in Mehta's mode). $E_{(li)}$ is same in T, X and XX

04) During boiling:- (Ref 1, 2, 3)

a) $E_{(o/r)}$ is reduced to zero. There is good energy only

b) $E_{(li)}$ of water-being is also "zero", because it becomes non-living water.

c) $E_{(li)}$ is due to $E_{(o/r)}$. Some radicals may exist as free radicals and others move as dedicated radicals through nano tubular structure of water-yoni body. They are bound with the structure of water yoni body.

d) It increases the entropy and thus max. randomness is achieved in water aura area.

e) Here, the energy is represented by $E_{(Mi)}$ and $E_{(dw)}$

f) In boiled distilled water, $E_{(Mi)}$ is also zero. Hence, its residual energy would be the Basic $E_{(dw)}$ energy only (or E_g). Fig 9.

E). Effect of Prānika Energy (Fig. 10a, b).

E_p (cosmic energy adsorbed by Live-water)

Due to action of Centripetal force of E_p on the existing energy field :-

1) The existing field gets disciplined as E_d, and

2) The $E_{(li)}$ component of the existing energy field adsorbs E_p

Adsorption of Pranik energy by the unsaturated / unsatisfied surface forces on the envelope reduces peaks and scattering of energy field area.

Compression by Ep makes the area A more coherent and smaller due to dynamisation. As expressed in equation (1)

$$E_{d-(li)} = E_p + E_{(li)} + E_{(b)} - E_{(Mi)} - E_{(o/r)} \text{ --- --- --- SHAH}$$

As per Jaina Vargana principle (Ref.6), the energy area would decrease and its density increase, when the pranik energy increases by adsorption.

E_t = Total energy (= mass, quantity)

$E_t \div EA$ = Density of energy. (E_d is a measure of energy density). By application of E_p, A is reduced, E_t would increase, and density of energy E_d would increase.

F). Events in Dynamisation:-

01) In Dynamisation, the energy field area may not expand. Only the energy concentration / density is increased (Ref 2) The symmetry of field also increases, as revealed in the samples X and XX. Here, whether Area A is also reduced or not, is to be rechecked & verified. A reduction in area would correspond to the principle of conversion of a vargana into higher varganas as per Ref. 5 & 6.

02) Process Analysis and its Flow diagram, Fig 11 to 15.

(Enhancing the potency from 6X to 7X, Ref)

When a characterized structure is mixed. with pure live-water cells, the core-molecule of characterized cell gets surrounded by raw water-cells as a hydration envelope. The surrounding water cells attain the quality of core molecule by Induction process. Their surface energy tentacles (as windows) open up.

That means:

a) Induction process transfers the properties of previous core-molecule of remedy to the cluster of the new raw water-cells.

b) Induction opens up surface tentacles of water clusters. These tentacles help in absorbing "Pranik Energy" in subsequent mechanical shakes

03) When a drop of 6x remedy is mixed in. fresh distilled water for making 7X potency, the fresh water makes a hydration-envelope around the water-cell body of 6X. The envelope gets the same disciplined structure of energy field, as that of 6X due to induction. But its outer periphery opens up its energy tentacles like surface fibers, during mechanical stirrings of potency making to receive further E_p (cosmic energy)

It is to be noted that the original 6X mol was saturated with E_p, it did not have any 'open' window to receive further 'E_p' for next higher potency.

The new envelope surface has unsatisfied attractive forces, better called residual valence forces. These forces are largely responsible for adsorption of cosmic energy.

The discipline level of hydration envelope is enhanced to that of 6X mol, probably in the 1st stirring itself.

4) Envelope is assembled in 3D mode with individual mols of water having 6X discipline, but having window-openings in the energy-field. Fresh cosmic-energy is adsorbed through these windows and the envelope gets further disciplined in subsequent stirrings. As 'E_p is adsorbed, the open windows start closing down. The opening or adsorption capacity gets reduced.

05) As soon as the envelope gets saturated, the windows (openings) are shut completely. Then the envelope cannot hold its members together any more. All mols fall apart, as fully disciplined entities with 7X potency.

6) It is saturated with 7X energy and doesn't have any open-window to absorb further cosmic energy.

(Pure solvent water is normally disciplined in the first stirring itself by induction method in potency making)

G) Conclusion

Above understanding of the process of characterization will provide a strong Foundation for 'homeopathy' studies and practice proven observation. Some Doctors and Practitioners forwarded a number of queries and sought explanations. The above theory could provide solution to all their queries in a very satisfactory manner.

References:
1. Jeoraj Jain - Living water-cells and working principle of Homoeopathy, Arhat Vacana, 19(1-2) 2007, p95-102.
2. Jeoraj Jain, "Second Series of Experiments on Water-Aura" Unpublished manuscript.
3. Jeoraj Jain, "Non-living Water and its comparison with living-water", Arhat Vacana, 20(3), Jul-Sep. 2008, p91-98, Kundkund Jnanapitha, Indore.
4. Acarya Sri Kanaknandji, Anant sakti Sampanna Parmanu se Lekar Parmatma, Dharma Darsan Seva Sansthan, Udaipur-1
5. Dr. N. L. Kachara, Jaina Karma Sidhanta, Adhyama aur Vigyan, Dharm Darsan Seva Sansthan, 55, Ravindra Nagar, Udaipur 313001
6. Narayan Lal Kachara, Vargana Vigydo, Arhat Vacan, Oct-Dec. 2008, p 03-24 Kundkund Jnanapitha, Indore.

FIGURES

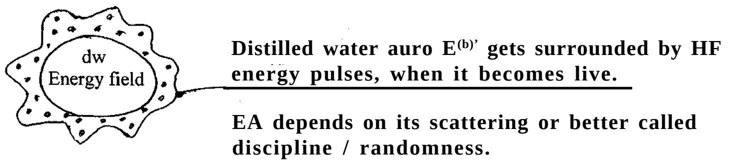

(Live Distilled water)
Fig. 1

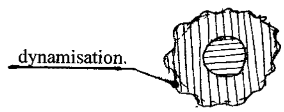

Fig. 2

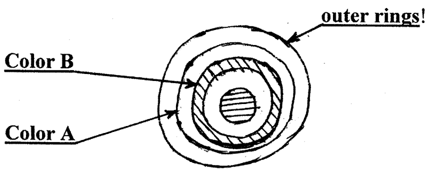

Fig. 3

Area of Energy field(EA)

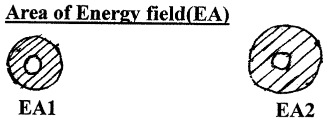

Energy Area E increases from A1 to A2
Fig 4

Densely packed   Rarely packed
Fig 5a

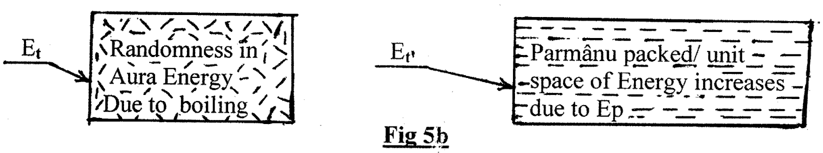

Fig 5b

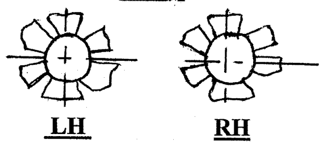

Symmetry comparison of LH with Right hand side Aura.

Fig. 6

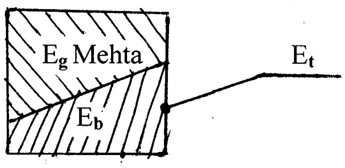

Fig. 7

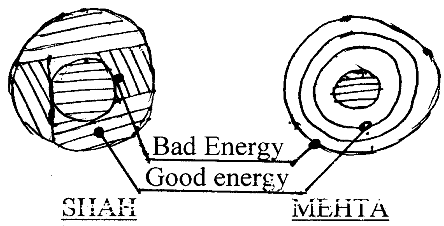

Fig. 8

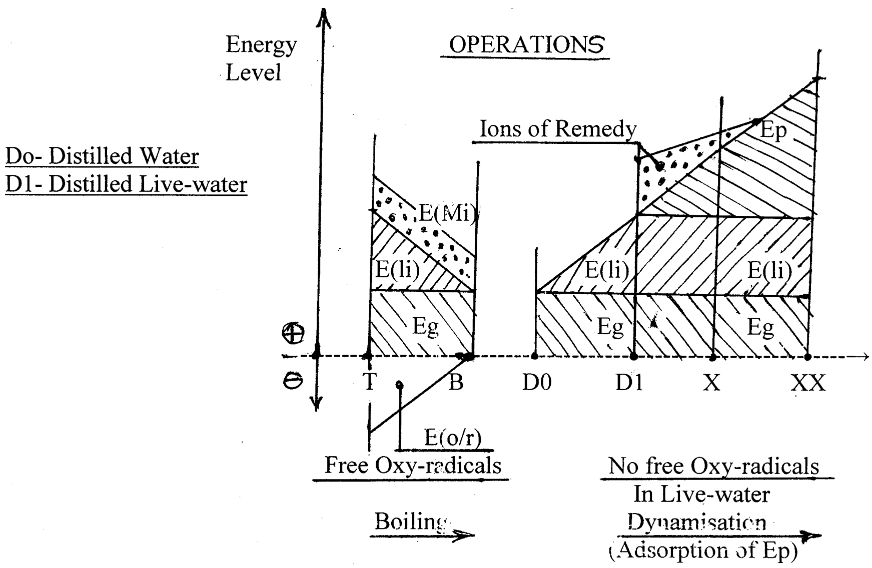

Fig. 9

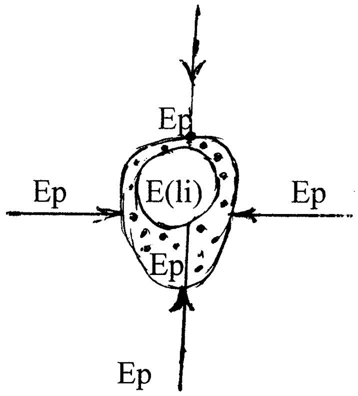

Adsorption of Ep
(from all directions)
Fig. 10a

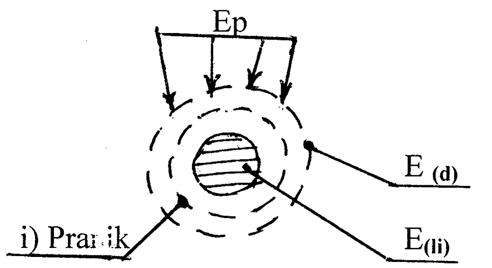

ii) Good energy------→- no change
iii) Bad energy------ → no change
iv) Total energy = $\mathbf{E_d = E_g + E_p - E_b}$
Fig. 10b

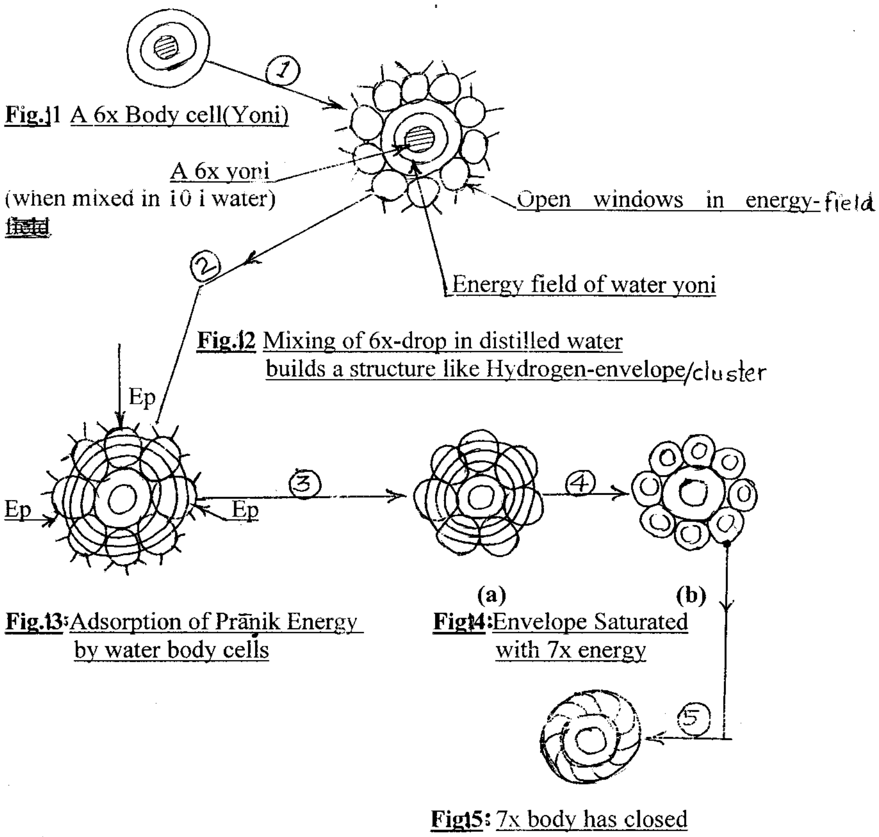

Fig.11 A 6x Body cell(Yoni)

Fig.12 Mixing of 6x-drop in distilled water builds a structure like Hydrogen-envelope/cluster

Fig.13: Adsorption of Prāṇik Energy by water body cells

Fig14: Envelope Saturated with 7x energy

Fig15: 7x body has closed tentacles (A final 7x mol)

Received : 15.09.09
After Revision 31.12.10

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

श्रुतावतार का यथार्थ

■ भागचन्द्र जैन 'भास्कर' *

दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार श्रुतपंचमी के दिन आचार्य पुष्पदन्त-भूतबलि ने अपना षट्खण्डागम (छक्खण्डागम) समाप्त किया था। इस अभूतपूर्व ग्रंथ को लिखकर समाज को समर्पित किया था। इन्द्रनन्दि ने इसे 'श्रुतावतार' की संज्ञा से अभिहित किया है।

प्रश्न उठता है कि श्रुतावतार की पृष्ठभूमि क्या है ? इन्द्रनन्दि को इसे श्रुतावतार क्यों कहना पड़ा ? ऐसे प्रश्नों के उत्तरों में दिगम्बर परम्परा की विवशता, प्रतिबद्धता, प्रातिभ दृष्टि, गंभीर विद्वत्ता और सकारात्मक सोच जैसे तत्त्व प्रतिबिम्बित होते हैं। आचार्य गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि पूर्वज्ञान और अंगज्ञान के एकदेशधर थे, श्रुत विच्छिन्नता कगार पर थी, मौखिक परम्परा अस्तंगत होती जा रही थी। वी.नि.सं. 345 तक श्रुत लगभग विच्छिन्न हो गया था। श्वे. परम्परा में यह स्थिति वी.नि.सं. 584 से 1000 वर्ष तक चलती रही। उसमें देवर्धिगणि क्षमाश्रमण अंतिम एक पूर्वधारी थे। यह 416 वर्षों का अन्तर सारी कथा अपने आप में समेटे हुए है।

वैदिक और बौद्ध परम्पराओं में भी यह मौखिक परम्परा विद्यमान रही है ई.सन् के आसपास तक। दिगम्बर परम्परा भी इसी समय के साथ चलती दिख रही है। परंतु श्वे. परम्परा यह समय लगभग 60 वर्ष आगे खींच रही है। इस समय तक साम्प्रदायिक मतभेद उग्र हो चुके थे। लेखन प्रारम्भ हो चुका था। आगमों में साम्प्रदायिकता भरे बीजों का वपन हो चुका था। आचार-विचार में भयंकर शैथिल्य आ चुका था। श्रुत-विच्छिन्नता ने अपना खेल खेलना प्रारंभ कर दिया था। ऐसी स्थिति में दिगम्बर परम्परा के समक्ष एक ही विकल्प शेष था—श्वे. परम्परा द्वारा मान्य श्रुत को विलुप्त मानकर उसे अस्वीकार कर देना।

इस समय तक उपलब्ध श्वेताम्बर आगमों में स्पष्ट रूप से एक ओर तो अचेलकता के प्रति सम्मान और श्रद्धा व्यक्त की गई और दूसरी ओर कालान्तर में श्वे. टीकाकारों और चूर्णिकारों ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए अल्पचेलकता की ओर उसे मोड़ा, सान्तरुतर जैसे नये शब्दों को गढ़ा, आहार-पान की ओर तृष्णा बढ़ी, त्याग-तपस्या का रूप-स्वरूप बदला, भाषात्मक विकास ने अपनी स्वाभाविकता पूर्वक नये सोपानों पर कदम बढ़ाये, आगमों का मूल रूप विकृत होने लगा, समय-समय पर आगमों का कलेवर घटने-बढ़ने लगा। वर्तमान उपलब्ध आगमों में ऐसी विकृतियां आ चुकी थी जिन्हें यथार्थ जैनत्व के साथ किसी भी स्थिति में संबद्ध नहीं किया जा सकता। ऐसी विकृतियां वस्त्र, आहार, विहार आदि से अधिक जुड़ी हुई हैं। मांस भक्षण की ओर झुकाव जैसे तत्त्व असहनीय हो चुके थे। आचार्य अकलंक ने आगमों से जो उद्धरण उद्धृत किये, आज वे उनमें उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में मूल आगमों के रूप-स्वरूप पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करना न तो अवांछनीय था और न अव्यावहारिक ही।

दृष्टिवाद पर कसायपाहुड़ और षट्खण्डागम आधारित रहे हैं। उसके विस्तृत उल्लेख समवायांग, नन्दिसूत्र, महानिसीथ, अनुयोगद्वार और आवश्यक निर्युक्ति में मिले हैं। पूर्वों की जानकारी ज्ञातृधर्मकथा, अन्तकृद्दशा और प्रश्नव्याकरण में विशेष मिलती है। नन्दिसूत्र में तो दृष्टिवाद का परिचय विस्तार के साथ दिया गया है। दिगम्बर परम्परा के तत्त्वार्थवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, धवला, जयधवला आदि ग्रंथों में भी दृष्टिवाद की विस्तृत सूचना मिलती है। ऐसी स्थिति में उसका लोप कैसे माना जा सकता है ? यह निश्चित ही एक प्रतिक्रियात्मक कदम रहा होगा।

दि. परम्परा में पाँच आचार्य, ग्यारह अंगधारियों का समय 220 वर्ष तथा चार आचारांगधारियों का समय 118 वर्ष माना जाता है। इस तरह कुल 683 वर्ष का समय गौतम गणधर से लोहाचार्य पर्यन्त माना

गया है। इसमें उसके बाद सभी आचार्य पूर्वज्ञान और अंगज्ञान के एकदेशधर ही हुए। आचार्य गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबली ऐसे ही आचार्य थे। श्वे. परम्परा में यह पूर्वज्ञान 1000 वर्ष तक बना रहा जबकि दिगम्बर परम्परा में यह पूर्वज्ञान वी.नि.सं. 345 में ही विच्छिन्न हो गया था। 655 वर्ष का यह अन्तर निश्चित ही विचारणीय है। यह इन्द्रनन्दि श्रुतावतार की परम्परा है। नन्दिसंघ प्राकृत पट्टावली इस परम्परा को 118 वर्ष पीछे ढ़केल देती है। जो भी हो, पूर्वज्ञान के बाद आचारांगादि के विच्छेद का भी उल्लेख दिगम्बर परम्परा में मिलता है पर अंगबाह्य आगमों के उच्छेद के विषय में कोई उल्लेख देखने में नहीं आया। इसका कारण शायद यह रहा हो कि अंग बाह्य ग्रंथों का परिगणन द्वादशांगों से बाहर है।

लगता है, एक लम्बे समय तक श्रुत परम्परा दोनों सम्प्रदायों में समान रूप से प्रचलित रही है। वैचारिक और सैद्धांतिक मतभेद जैसे-जैसे उग्रतर होते गये, दूरियां बढ़ती गईं। उपलब्ध आगमों में अवांछित सामग्री जुड़ती-घटती रही। उसका मूल स्वरूप छिन्न-भिन्न होने लगा।

आज आवश्यकता यह है कि हम वस्तुस्थिति को निष्पक्ष रूप से समझने का प्रयत्न करें।

1. तीर्थंकर महावीर की आद्य परम्परा तीर्थंकर ऋषभदेव की रही है जिनका उल्लेख ऋग्वेद में एक अचेलक महापुरुष के रूप में पचासों बार हुआ है।

2. सिन्धु-हड़प्पा के उत्खनन में सबसे निचले स्तर से प्राप्त टोरसो में एक भव्य दिगम्बर प्रतिमा का रूपांकन हुआ है।

3. लोहानीपुर में भी लगभग इसी रूप में दिगम्बर मुद्रा में जैन मूर्ति उपलब्ध हुई है जो लगभग द्वितीय शताब्दी ई.पू. की है। यह मूर्ति वर्तमान में पटना संग्रहालय में सुरक्षित है।

4. खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में जिस कलिंग प्रतिमा का उल्लेख हुआ है और जिसे नन्दराज कलिंग उठा ले गया वह भी अचेलक रही है। यह मूर्ति लगभग चतुर्थ शदी ई.पू. की होनी चाहिए।

5. मथुरा कंकाली टीले से प्राप्त प्राचीनतम जैन मूर्तियां भी लगभग प्रथम शताब्दी की अचेलक अवस्था में मिली है।

इससे इस तथ्य को हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि दिगम्बर परम्परा की अचेलक परम्परा सर्वमान्य और प्राचीनतर रही है। श्वे. परम्परा द्वारा मान्य आगमिक ग्रंथों में भी इसे स्वीकारा गया है।

श्वेताम्बर परम्परा में कोई भी मूर्ति पांचवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं मिलती।

इस तथ्य की पृष्ठभूमि में अब यह अत्यावश्यक है कि हम उपलब्ध आगमिक ग्रंथों पर इतिहास परक चिन्तन प्रस्तुत करें और तीर्थंकर महावीर की मूल वाणी तक पहुंचने का प्रयत्न करें। इससे सामाजिक समरसता भी बढ़ेगी और विलुप्त या अज्ञात इतिहास की परतों का उद्घाटन भी हो सकेगा।

इस उद्देश्य की पृष्ठभूमि में हर आगम का समय निर्धारण नितान्त आवश्यक है। प्राचीन तीर्थं जीर्णोद्धार के आगामी अंकों में एतद्विषयक आलेख माला प्रकाशित करने का विचार है।

यह शोध योजना श्रमसाध्य और समयसाध्य है, अर्थसाध्य भी। यदि हम उपलब्ध आगमों में से मूल आगमों का निर्धारण कर सकें और शौरसेनी प्राकृत जैन आगमों को समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सकें तो इसे दिगम्बर जैन समाज के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जायेगी। विलुप्त आगमों का मिल जाना एक ऐतिहासिक यथार्थवत्ता होगी।

हमारी इस शोध योजना से यदि कोई संस्थान जुड़ना चाहे तो उसका हम हार्दिक स्वागत करेंगे। इसमें कोई साम्प्रदायिक भेदभाव नहीं रहेगा। मात्र महावीर की निष्कलुष और वीतरागी आध्यात्मिक साधना से ओतप्रोत वाणी-सरिता का स्वच्छ प्रवाह खोजना है जिसमें आप्लावित होकर हम अपनी पुनीत विरासत को पुनः प्राप्त कर सकें और उसे सुरक्षित रखने का प्रावधान कर आनन्दित हो सकें।

प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार पत्रिका जुलाई 2011 से साभार सम्पादित रूप में

* कस्तूरबा वाचनालय के पास, सदर, नागपुर (महाराष्ट्र)
09421363926

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन ज्योतिष की मौलिकता

■ आचार्य अशोक सहजानन्द *

इक्कीसवीं शती में जब अंतरिक्ष में अनुसंधान के लिए अत्यधिक समुन्नत उपकरण उपयोग में लाये जा रहे है और हमारे चिर-परिचित ग्रहों के सम्बंध में अब तक अज्ञात नयी-नयी खोजें की जा रही है, तब क्या हम प्राचीन ज्योतिष ग्रंथों में वर्णित इन ग्रहों के विवरणों और तथाकथित प्रभावों को किस सीमा तक मानें ?

हम सभी जानते हैं कि हमारी पृथ्वी सूर्य-परिवार अर्थात् सौर मंडल का अंग है। इस सौर मण्डल के केन्द्र में सूर्य है और पृथ्वी सहित अन्य हमारे ज्ञात ग्रह अर्थात् मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि अपनी-अपनी कक्षा में सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। चन्द्रमा पृथ्वी का एक उपग्रह है जो अपनी परिक्रमा करता हुआ, उसके साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा कर रहा हैं। चन्द्रमा जैसे उपग्रह अन्य ग्रहों के भी हैं, जैसे गुरु और शनि की परिक्रमा करने वाले अनेक ग्रह हैं।[1]

भारतीय ज्योतिष में राहु-केतु सहित नवग्रहों की चर्चा है अर्थात् सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु। राहु-केतु पार्थिव ग्रह नहीं, काल्पनिक हैं। इसलिए इन्हें छाया ग्रह कहा जाता है। इधर पाश्चात्य खगोलविदों ने तीन और ग्रहों की खोज की है। ये है - नेपच्यून, यूरेनस और प्लूटो।

अब यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि अंतरिक्ष में हमारे सौर मंडल की भांति अनेक सौर मंडल हैं, असंख्य सूर्य हैं। इसी तरह हमारा सौर मंडल जिस आकाश गंगा या गैलेक्सी में स्थित है, वैसी आकाश गंगाएं भी असंख्य हैं, इन्हें निहारिकाएं नाम दिया गया है।

निहरि कहते हैं रूई के फोये के समान गिरते हुए बर्फ को। आकाश में जो इस प्रकार के बर्फ या धुंए या हल्के बादल के समान फैले हुए धब्बे दिखायी पड़ते हैं, उन्हें निहारिका कहते हैं। इनकी संख्या भी लाखों में है। ज्योतिषियों का अनुमान है कि कम से कम एक अरब निहारिकाएं तो हैं ही और प्रत्येक निहारिका में लगभग इतने ही तारे अर्थात् सूर्य है।[2]

ज्योतिष : एक सम्पूर्ण विज्ञान

सूर्य और चंद्र का प्राणी जगत एवं वनस्पति जगत पर पड़ने वाले प्रभाव से सभी परिचित हैं। सूर्य से ही धरती पर जीवन है पर वैज्ञानिकों ने शोध कर पता लगाया है कि यदि चंद्रमा या गुरु ग्रह न होता तो भी सूर्य के होने के बावजूद धरती पर आज जैसा जीवन नहीं होता। यदि चंद्रमा न होता तो शायद मनुष्य का वर्तमान रूप भी न होता, धरती पर सारा जीवन जलमय ही होता अर्थात् पृथ्वी पर थलचर की बजाय जलचर ही होते अर्थात् पानी में रहने वाले जीव। इसी प्रकार यदि गुरु अपने गुरुत्वाकर्षण से अंतरिक्ष के शीतकाय उल्का पिंडों को अपनी ओर नहीं खींचता तो शायद वे पृथ्वी से टकराते रहते और उस स्थिति में आज जैसा जीवन होता, इसमें संदेह है। डाइनासोरों आदि का विनाश भी ऐसे ही एक भीमकाय उल्का पिंड के पृथ्वी से टकराने से हुआ था।

यद्यपि आज ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता, उसकी उपयोगिता और इक्कीसवीं शती में उसकी सार्थकता को लेकर पक्ष-विपक्ष में काफी बहस होती रहती है। कुछ लोगों के लिए वह महज एक अंध-विश्वास है तो कुछ लोग उसकी सहायता के बिना जीवन के अनेक महत्वपूर्ण निर्णय, विवाह संबंध,

भवन निर्माण, यात्रा आदि कोई भी कार्य पूरा नहीं करते ।[3]

ज्योतिष शास्त्र के संबंध में एक महत्वपूर्ण विडम्बना यह है कि उसके प्रचार-प्रसार के बावजूद कुछ ऐसे अपूर्ण ज्ञान रखने वाले ज्योतिष शास्त्रियों ने उसका पूर्ण व्यवसायीकरण कर दिया हे । उनका भविष्य कथन अक्सर खरा नहीं उतरता और उनके कारण सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है ।

जैन ज्योतिष के मौलिक सिद्धांत -

ज्योतिष के इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों द्वारा निर्मित ज्योतिष ग्रंथों से जहां अनेक मौलिक सिद्धांत साकार हुए, वहीं भारतीय ज्योतिष में अनेक नवीन बातों का समावेश तथा प्राचीन सिद्धांतों का परिमार्जन भी हुआ । जैन विद्वानों द्वारा रचे गये ग्रंथों की सहायता के बिना इस विज्ञान के विकास क्रम को समझना कठिन ही नहीं, असंभव है । जिस प्रकार वेद संहिता में पंच वर्षात्मक युग है और कृतिका से नक्षत्र गणना है उसी प्रकार जैन अंग ग्रंथों में भी है । इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है । पंच वर्षात्मक युग का सर्वप्रथम उल्लेख जैन ज्योतिष में ही मिलता है ।[4]

सूर्य प्रज्ञप्ति में पंच वर्षात्मक युग का उल्लेख करते हुए लिखा है - श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन सूर्य जिस समय अभिजित नक्षत्र पर पहुंचता है, उस समय पंचवर्षीय युग का प्रारम्भ होता है ।

जैन ज्योतिष में पौर्ष मास्यान्त मास गणना ली गई है किन्तु याजुष ज्योतिष में दर्शान्त मास गणना स्वीकार की गई है । इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में पौर्ष मास्यान्त मास गणना ली जाती थी किन्तु यवनों के प्रभाव से दर्शान्त मास गणना की जाने लगी ।

प्राचीन जैन ज्योतिष में हेय पर्व तिथि का विवेचन करते हुए अवम के संबंध में बताया गया है कि एक सावन मास की दिन संख्या 30 और चन्द्र मास की दिन संख्या 21+32/62 है । सावन मास और चन्द्रमास का अन्तर अवम होता है । अतः 30-(29+32/62) = 30/62 अवम भाग हुआ। इस अवम की पूर्ति दो मास में होती है । अनुपात से एक दिन अवमांश 1/62 आता है । यह सूर्य प्रज्ञप्ति सम्मत अवमांश वैदिक ज्योतिष में भी है ।

वेदांग ज्योतिष की रचना के अनन्तर कई शती तक इस मान्यता में भारतीय ज्योतिष ने कोई परिवर्तन नहीं किया लेकिन जैन ज्योतिष के उत्तरवर्ती ज्योतिष करण्डक आदि ग्रंथों में सूर्य-प्रज्ञप्ति कालीन स्थूल अवमांश में संशोधन और परिवर्तन मिलता है । प्रक्रिया निम्न प्रकार है - इस काल में 30/62 की अपेक्षा 31/62 अवमांश माना गया है । इसी अवमांश पर त्याज्य तिथि की व्यवस्था की गई है । इससे वराहमिहिर भी प्रभावित हुए हैं । इससे स्पष्ट है कि अवम तिथि क्षय संबंधी प्रक्रिया का विकास जैनाचार्यों ने स्वतंत्र रूप से किया। समय-समय पर इस प्रक्रिया में संशोधन एवं परिवर्तन होते गये ।

वेदांग ज्योतिषक ग्रंथों में पर्वों का ज्ञान कराने के लिए दिवसात्मक ध्रुवराशि का कथन किया गया है । यह प्रक्रिया गणित दृष्टि से अत्यंत स्थूल है । जैनाचार्यों ने इसी प्रक्रिया को नक्षत्र रूप में स्वीकार किया है । इसके मत से चन्द्र नक्षत्र योग का ज्ञान करने के लिए ध्रुव राशि का प्रतिपादन है।

जहां वेदांग ज्योतिष में व्यतिपात का केवल नाममात्र उल्लेख मिलता है वहां जैन ज्योतिष में गणित संबंधी विकसित प्रक्रिया भी मिलती है । इस प्रक्रिया का चन्द्रनक्षत्र एवं सूर्य नक्षत्र संबंधी व्यतिपात के आवमन में महत्वपूर्ण उपयोग है । वराहमिहिर जैसे गणकों ने इस विकसित ध्रुवराशि

पट्टिका के अनुकरण पर ही व्यतिपात संबंधी सिद्धांत स्थिर किए हैं।

जिस काल में जैन पंचांग की प्रणाली का विकास पर्याप्त रूप में हो चुका था, उस काल में अन्य ज्योतिष में केवल पर्व, तिथि, पर्व के नक्षत्र एवं योग आदि के आवमन का विकास मिलता है। पर्व और तिथियों में नक्षत्र लाने की जैसी सुन्दर एवं विकसित जैन प्रक्रिया है वैसी ज्योतिष में छठी शती के बाद के ग्रंथों में उपलब्ध होती है।

इसी प्रकार जैन ज्योतिष में संवत्सर की प्रक्रिया भी मौलिक एवं महत्वपूर्ण है। जैनाचार्यों ने जितने विस्तार के साथ इस सिद्धांत के ऊपर लिखा है, उतना अन्य सिद्धांतों के संबंध में नहीं। फलतः ज्योतिषक में इन संवत्सरों के प्रवेश एवं निर्माण आदि के द्वारा विस्तार से फल बताया है।

षट्खण्डागम धवला टीका के प्रथम खंडगत चतुर्थांश में प्राचीन जैन ज्योतिष की कई महत्वपूर्ण बातें सूत्र रूप में विद्यमान है, उससे समय के शुभाशुभ का ज्ञान कराने के लिए दिन-रात्रि के मुहूर्त बताये हैं। आठवीं शताब्दी के जैन ज्योतिष संबंधी मुहूर्त ग्रंथों में इन्हीं मुहूर्तों को अधिक पल्लवित करके प्रत्येक दिन के शुभाशुभ कृत्यों का प्रहरों में निरूपण किया है। इसी प्रकार राशि के भी मूहूर्त है। ज्योतिष शास्त्र में इस प्रक्रिया का विकास आर्यभट्ट के बाद निर्मित फलित ग्रंथों में ही मिलता है।[5]

तिथियों की संज्ञा भी सूत्र रूप में धवला में आयी है - नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता (तुका) और पूर्णा ये पांच संज्ञाएं पन्द्रह तिथियों की निश्चित की गई हैं। इसके स्वामी क्रम से चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म बताये गए है। पितामह सिद्धांत, पौलस्त्य सिद्धांत नारदीय सिद्धांत में इन्हीं तिथियों का उल्लेख स्वामियों सहित मिलता है पर स्वामियों की नामावली जैन नामावली से सर्वथा भिन्न है। इसी प्रकार सूर्य नक्षत्र, वार्हस्पत्य नक्षत्र एवं शुक्र-नक्षत्र का उल्लेख भी जैनाचार्यों ने विलक्षण सूक्ष्म दृष्टि और गणित प्रक्रिया से किया है।

अयन संबंधी जैन ज्योतिष की प्रक्रिया तत्कालीन ज्योतिष ग्रंथों की अपेक्षा अधिक विकसित और मौलिक है। इसके अनुसार सूर्य का चर क्षेत्र सूर्य के भ्रमण मार्ग की चौड़ाई पांच सौ दस योजन से कुछ अधिक बतायी गई है। इसमें से एक सौ अस्सी योजन चर क्षेत्र तो जम्बूद्वीप में हैं और अवशेष तीन सौ तीस योजन प्रमाण लवण समुद्र जम्बूद्वीप को चारो ओर से घेरे हुए हैं। सूर्य के भ्रमण करने के मार्ग एक सौ चौरासी हैं। इन्हें शास्त्रीय भाषा में वीथियां कहा जाता है। एक सौ चौरासी भ्रमण मार्गों में एक सूर्य का उदय एक सौ तेरासी वार होता है। जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा माने गये हैं, एक भ्रमण मार्ग को तय करने में दोनों सूर्यों को एक दिन और एक सूर्य को दो दिन अर्थात् साठ मुहूर्त लगते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में 366 दिन और एक अयन में 183 दिन होते है।

सूर्य जब जम्बूद्वीप के अंतिम आभ्यान्तर मार्ग से बाहर की ओर निकलता हुआ लवण समुद्र की तरफ जाता है तब बाहरी लवण समुद्रस्थ अंतिम मार्ग पर चलने के समय को दक्षिणायन कहते हैं और वहां तक पहुंचने में सूर्य को 183 दिन लगते हैं। इसी प्रकार लवण समुद्र के बाह्य अंतिम मार्ग तक पहुंचने में उसे 183 दिन लग जाते हैं। पंच वर्षात्मक युग में उत्तरायण और दक्षिणायन संबंधी तिथि नक्षत्र का विधान सर्वप्रथम युग के आरंभ में दक्षिणायन बताया गया है। यह श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को अभिजित नक्षत्र में होता है।

दूसरा उत्तरायण माघ कृष्ण सप्तमी हस्त नक्षत्र में, तीसरा दक्षिणायण श्रावण कृष्ण त्रयोदशी मृगसिर नक्षत्र में, चौथा उत्तरायण माघ शुक्ला चतुर्थी शतमिषा नक्षत्र में, पांचवा दक्षिणायण श्रावण

शुक्ल दशमी विशाखा नक्षत्र में, छठा उत्तरायण माघ कृष्णा प्रतिपदा पुष्य नक्षत्र में, सातवां दक्षिणायन श्रावण कृष्ण सप्तमी रेवती नक्षत्र में, आठवां उत्तरायण माघ कृष्ण त्रयोदशी मूल नक्षत्र में, नौवां दक्ष्झिणायण श्रावण शुक्ल नवमी पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में और दसवां उत्तरायण माघ कृष्ण त्रयोदशी वृत्तिका नक्षत्र में माना गया है। किन्तु तत्कालीन ऋक, याजुष और अथर्व ज्योतिष में युग के आदि में प्रथम उत्तरायण बताया गया है। प्रक्रिया अब तक चली आ रही है। कहा नहीं जा सकता कि युगादि में दक्षिणायण और उत्तरायण का इतना वैषम्य कैसे हो गया ?

जैन मान्यता के अनुसार जब सूर्य उत्तरायण होता है - लवण समुद्र के बाहरी मार्ग से भीतर जम्बूद्वीप की ओर जाता है उस समय क्रमशः शीत घटने लगता है और गर्मी बढ़ने लग जाती है। इस सर्दी और गर्मी के वृद्धि ह्रास के दो कारण हैं , पहला यह है कि सूर्य के जम्बूद्वीप के समीप आने से उसकी किरणों का प्रभाव यहां अधिक पड़ने लगता है। दूसरा कारण यह कहा जा सकता है कि उसकी किरणें समुद्र के अगाध जल पर से आने से ठंडी पड़ जाती है। उनसे क्रमशः जम्बूद्वीप की ओर गहराई कम होने और स्थल भाग पास होने से संताप अधिक बढ़ता जाता है, इसी कारण यहां गर्मी अधिक पड़ने लगती है। यहां तक कि सूर्य जब जम्बूद्वीप के भीतरी अंतिम मार्ग पर पहुंचता है तब यहां पर सबसे अधिक गर्मी पड़ती है।

नक्षत्रों के आकार संबंधी उल्लेख भी जैन ज्योतिष की अपनी विशेषता है। चन्द्रप्रज्ञप्ति में नक्षत्रों के आकार-प्रकार, भोजन-वसन आदि का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि अभिजित नक्षत्र गोश्रृंग, श्रावण नक्षत्र कपाट, धनिष्ठा नक्षत्र पक्षी का पिंजरा, शतमिषा नक्षत्र पुष्प की राशि, पूर्व भाद्रपद एवं उत्तर भाद्रपद अर्ध बावड़ी, भरणी नक्षत्र स्त्री की योनि, कृतिका नक्षत्र ग्राह, रोहिणी नक्षत्र शकट, मृगशिरा नक्षत्र मृगमस्तक, आर्द्रा नक्षत्र रुधिर बिन्दु, पुनर्वसु नक्षत्र चूलिका, पुष्य नक्षत्र बढ़ता हुआ चन्द्र, आश्लेषा नक्षत्र ध्वजा, मघा नक्षत्र प्राकार, पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी अर्धपल्पक, हस्त नक्षत्र हथेली, चित्रा नक्षत्र मउआ के पुष्प, स्वाति नक्षत्र खीले, विशाखा नक्षत्र दामिनी, अनुराधा नक्षत्र एकावली, ज्येष्ठा नक्षत्र गजदन्त, मूलनक्षत्र विच्छू, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हस्ती की चाल और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र सिंह के आकार का होता है।

यह नक्षत्रों की संस्थान संबंधी प्रक्रिया वराह मिहिर के पूर्वकाल की है। इसके पूर्व कहीं भी नक्षत्रों के आकार की प्रक्रिया का उल्लेख नहीं है। इस प्रकार नक्षत्रों के संस्थान, आसन, शमन आदि के सिद्धांत जैनाचार्यों द्वारा निर्मित होकर उत्तरोत्तर पल्लवित और पुष्पित हुए।

संदर्भ स्थल -

1. ज्योतिष कौमुदी, पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल, मेघ प्रकाशन, दिल्ली-6, 2010
2. 'सहज-आनन्द' (त्रैमासिक), ज्योतिष-अंक, सितम्बर 2005
3. ग्रह शांति दीपिका, आचार्य अशोक सहजानन्द, मेघ प्रकाशन, दिल्ली-6, 2007
4. ज्ञान प्रदीपिका, आचार्य अशोक सहजानन्द, अरिहंत इंटरनेशनल, दिल्ली-6, 2011
5. 'णाणसायर' (जैन शोध पत्रिका), जैन ग्रंथागार-दिल्ली-6, जनवरी - 1993

प्राप्त: 08.02.11

✲ मेघ प्रकाशन, 239, दरीबां कलाँ,
चाँदनी चौक, दिल्ली -110006

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

मुड़वारा तहसील जिला कटनी की जैन प्रतिमाएं

■ नरेश कुमार पाठक*

मध्य प्रदेश के महाकौशल अंचल में मुड़वारा तहसील कटनी जिले में स्थित है। यह तहसील 23°23′ से 23°59′ उत्तरी अक्षांस एवं 80°15′ से 80°31′ पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। जानकारी के अनुसार मुड़वारा तहसील के प्राचीन निवासी पुरा पाषाणकालीन मानव थे। घुघरा से लघु पाषाण उपकरण एवं झिझरी से चित्रित शैलाश्रय मिले हैं। इस क्षेत्र में मौर्य, शुंग, सातवाहनों का प्रभाव रहा, गुप्त-कालीन मंदिर डिठवारा से मिला है। कलचुरिकालीन अवशेष इस क्षेत्र से विपुल मात्रा में मिले हैं। माह दिसम्बर 2010 में मुझे मुड़वारा तहसील के सर्वेक्षण में जोवी कला से तीर्थकर आदिनाथ, कन्हवारा से जैन प्रतिमा पादपीठ एवं तीर्थकर आदिनाथ, पिपरहट से गोमेध-अम्बिका एवं खमतरा से तीर्थकर सम्मवनाथ की प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं ये सभी प्रतिमाएं लगभग 10वीं 11वीं राती ईस्वी की हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है :-

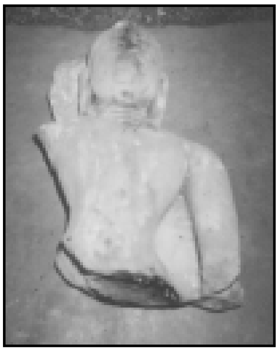

आदिनाथ- प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की यह प्रतिमा जोवीकला से प्राप्त हुई है। तीर्थकर का कमर से ऊपर का भाग प्राप्त है। तीर्थकर के दोनों हाथ टूटे हैं। सिर पर कुन्तलित केश, जिनके लम्बे केश कंधे तक फैले हुये हैं। इस आधार पर प्रतिमा प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की हो सकती है। वक्ष पर श्री वत्स का अंकन है। बलुआ पत्थर पर निर्मित 35 X 20 X10 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग 11 वी शती ईस्वी की है।

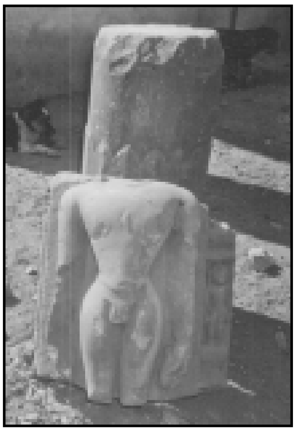

आदिनाथ- प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की प्रतिमा कन्हवारा से प्राप्त हुई है। कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकित है, सिर व पैर नीचे से टूटे हुये हैं। कंधे पर फैले हुये केशों से प्रतीत होता है, कि प्रतिमा तीर्थंकर आदिनाथ की रही होगी, वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह है, पार्श्व में बायीं ओर कायोत्सर्ग में जिन प्रतिमा खड़ी है, जो कुन्तलित केश, लम्बे कर्ण चाप एवं वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन है। बलुआ पत्थर पर निर्मित 45X40 X20 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग 11 वी शती इस्वी की है।

सम्भवनाथ - तीसरे तीर्थकर सम्भवनाथ की यह प्रतिमा खमतरा गांव के हनुमान के नाम से पूजते है जिस पर सिन्दूर का लेपन कर दिया गया है। कार्यात्सर्ग मुद्रा में अंकित तीर्थकंर के सिर पर कुन्तलित केश, लम्बे कर्णचाप है। वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन है। पादपीठ पर दोनों ओर चँवरधारी खड़े हैं, जो एक हाथ में चंवर लिये है। दोनो मुकुट, कुण्डल, हार, केयूर, बलय, मेखला व नूपुर पहने हैं। पार्श्व में दोनों ओर खण्डित अवस्था में पूजक है। पादपीठ

के नीचे के भाग में विपरीत दिशा में मुख किये सिंह, मध्य में ध्वज लांछन अश्व (घोड़े) का अंकन है। दायें ओर परिकर में सिंह व्याल उसके नीचे यक्षी प्रज्ञप्ति बैठी है, प्रतिमा की दायीं भुजा अस्पष्ट, बांयी भुजाओं में खड्ग एवं पिडी लिये है। उसके नीचे यक्ष त्रिमुख मयूर पर आरूढ़ है। बलुआ पत्थर पर निर्मित 125X 40X25 से.मी. आकर की प्रतिभा लगभग 11वी सदी ईस्वी की है।

जैन प्रतिमा का पादपीठ-यह प्रतिमा कव्हवारा से प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा पर तीर्थंकर एवं चंवरधारी के पैर ही शेष है। मध्य में चक्र है, दोनों ओर विपरीत दिशा में मुख किये सिंह का अंकन है। बलुआ पत्थर पर निर्मित24X24X10 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग 11 वी शती ईस्वी की है।

गोमेघ-आम्बिका - यह बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्ष–यक्षी गोमेघ-आम्बिका की प्रतिमा पिपरहट से प्राप्त हुई है। सत्यललितासन में बैठे गोमेघ की बांयी ओर सव्य ललितासन में अम्बिका बैठी है। दोनों के हाथ खण्डित है। गोमेघ करण्ड मुकुट, कुण्डल, एकावली, दोवली हार, यज्ञोपवीत, केपूर, बलय, मेखला व नूपर पहने है। आर्म्वका का दाया हाथ खण्डित है, बांया हाथ लघु पत्र प्रियंकर को सहारा दिये हुये है। यक्षी करण्ड मुकुट, कुण्डल, एकावली हार, उरोज तक फैली हारावली, केयूर बलय, मेखला पहने हैं। नीचे सात प्रतिमाएं हाथ जोड़े बैठी हुई हैं। दोनों के मध्य से निकलते हुए आम्र वृक्ष की लतायें दोनों के ऊपर छाया किये हैं। जिसके मध्य तीर्थकंर नेमिनाथ पद्मासन मुद्रा में बैठे है। बलुआपत्थर पर निर्मित 30X20X8 से.मी. आकार की प्रतिमा लगभग 11 वी शती ईस्वी की है।

मुड़वारा तहसील से प्राप्त उपरोक्त प्रतिमाएं अभी प्रकाश में आयी है, इन प्रतिमाओं की प्राप्ति कटनी जिले में जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ती है।

* संग्रहाध्यक्ष
जिला पुरातत्व संग्रहालय
हिन्दूपत महल
पन्ना (मध्यप्रदेश)

प्राप्त : 25.01.11

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapīṭha, Indorer

Acharya Gyan Sagar : A Great Poet

■ Subhash Jain*

A great poet and Digambar Jain ascetic Acharya Gyan Sagar (Ācārya Jñāna Sāgara) born in the last decade of 19th Century and lived till the 20th century on Indian soil was such an outstanding personality who innovated the composition of Jaina Literature almost thrown in the well of oblivion for 500 years. He himself enriched the Jain Literature through his writings. His contribution in Sanskrit (Saṁskṟta) and Hindi Literature is immense. He endeavored to bring to life the 'Ādidharm'- Jain religion based on self discipline. He composed nine epics in Sanskrit out of which four are widely read. They are- Bhadrodaya', 'Sudarśanodaya", 'Jayodaya' and 'Vīrodaya'. In Sanskrit Literature 'Kirātāirjunīya by Bhāravi, Śiśupālavadha by Māgh and Naiṣadhacarita by Harṣa are regarded as Vṟhatrayī (Three great), Critics have included 'Jayodaya' of Acharya Gyan Sagar and Named Vṟahatcatuṣtayī (four great). The 'Jayodaya' is included in the syllabus of M.A. Sanskrit by the University of Sagar. A number of Scholars worked on the works of the Acharya and presented research thesis and obtained Ph.D. and D.Lit. degrees. The former President Dr. Shankardayal Sharma on the occasion of bringing out the third edition of the epic highly praised it.

The Hindi epic Ṛṣabhāvatāra based on the story of the Mahāpurāṇa is about the life of lord Rishabh Dev (Ṛṣabha deva), the first Tirthaṁkara. In this epic the poet has depicted the Jain Philosophy and religion in a very simple and practical way so as to send to the reader's heart. The verse in 'Gun Sundar Vritant' says, नही दूसरों को सुधारने से सुधार हो पाता है। अपने आप सुधरने से फिर सुधर दूसरा जाता है। (There is no amendment in amending others. Mending one's own self mends others.) 'Bhāgyodaya', 'Kartavya patha Pradarśan', 'Mānava dharm', Svāmī Kundakunda aur 'Sanātan Jaina Dharma' and 'Vivekodaya' are some of his unique literary compositions in Hindi.

The original worldly name of the great poet Acharya Gyan Sagar was Bhūrāmala. He was born on June 2, 1891 in a village Ranoli in the District Sikar of Rajasthan. His father was Chaturbhuj and Mother was Ghratāvarī Devī, Khandelwal Digambara Jain. He had his early education in the school of Village Ranoli and Higher education from Queen's College, Varanasi. During his study here he took a vow of celibacy for the whole life and Surrendered himself for the service of Jainism and Literature.

Acharya Gyānsagar followed the path of sacrifice to implement his own saying 'Gyan bhāram kriyā binā' i.e. Knowledge without action is a burden. As such lie left his home in 1949 and got consecrated as 'Kṣhullaka' (Primary stage of Jain ascetic) by Ācārya Vīrasāgara in 1955 and named - Gyanbhooshan and as muni i.e. ascetic on June 22, 1959 by Acharya Shivasagar. He was named Gyan sagar. During this period he continued his study, teaching and writing religious Literature. He realized the simplicity and gravity of the life of an ascetic and devoted himself by mind,, word and action for the cause of Jainism. He was a great scholar and orator of Jainism. Acharya Vidyasagar, a Kannad Knowing person is his unique creation. He used to say if you want to be happy don't make others unhappy. Abondon your passions, Limit your desires, be contented only then you may achieve happiness. The life full of spiritualism and selflessness leads to moral, and spiritual development. On the request of the group of Jain ascetics (munis and aryikās) and devotees he agreed to become Acharya, the head of ascetics on Feb. 17, 1969 at Naseerabad (Rajasthan)

'Chaturmas' (Cāturmas) (four months of rainy season-the staying time of ascetics at a place) of 1972 in Naseerabad he became physically weak with growing age and observing intense penance and afflictions. He, therefore, handed over Achayapost to his most suitable disciple,, Vidyasagar, on Nov. 22, 1972 in the presence of the Society. His disciple humbly asked him, 'How can I promote the religion during movement in your absence ?'. His simple reply was, 'Not to work for the demotion is great promotion'. He abondoned the attachment for the perishable body and gradually abondoned taking food stuffs. In the presence of ascetics, devotees and public he observed the procedure of physical mortification (yama sallekhna) for holy death under the guidance of Acharya Vidyasagar and abondoned his perishable physical body on June 1, 1973 peacefully. It was the supreme transformation of Digamber Jain Tradition. His physical body is perished, the lamp of Knowledge and worldly detachment he has kindled will continue to enlighten the path of religious observers for ages to come.

Received : 24.01.11

* Retd. Principal
Abhinand Nagar,
Makronia - Sagar (M.P.)
Mob. 9425626653

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

π की जगह टाऊ

■ अनिल चौहान* / डॉ. अनुपम जैन

अब 'पाई' की जगह 'टाऊ' चाहते हैं गणितज्ञ

वृत्त को मापने के लिए पाई का उपयोग सही नहीं मानते

एजेंसी | लंदन

गणित की 'पाई' के दिन अब लद सकते हैं। गणितज्ञों के एक बड़े समूह का मानना है कि अब समय आ गया है, कि इसकी जगह 'टाऊ' का इस्तेमाल हो। 'डेली मेल' की एक रिपोर्ट के अनुसार गणितज्ञों का दावा है कि पाई गलत नहीं है। लेकिन वृत्त (घेरे) के गुणों के साथ इसे जोड़ना ठीक नहीं है। हालांकि अभी इस पर कोई फैसला नहीं हुआ है।

लीड्स विवि के स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स के गणितज्ञ केविन ह्यूस्टन के अनुसार, 'सालों से हम पाई का उपयोग कर रहे हैं, जिससे सही उत्तर नहीं मिलता। पाई प्राकृतिक अंक नहीं है, जिसे वृत्त के साथ जोड़ा जाए। सही अंक है 2पाई या टाऊ।' उन्होंने यह भी कहा, गणितज्ञ कोण को डिग्री में नहीं नापते, उसे रेडियन में नापा जाता है। एक वृत्त में 2पाई रेडियन होते हैं इसलिए वृत्त के एक चौथाई हिस्से में आधा पाई रेडियन होता है, लेकिन वृत्त के तीन चौथाई हिस्से को नापने में कठिनाई हो सकती है। टाऊ के प्रयोग से आधे वृत्त को आधा टाऊ, एक चौथाई हिस्से को एक चौथाई टाऊ और ऐसे ही अन्य हिस्सों को मापा जा सकता है। इसमें कठिनाई नहीं होगी।

पाई और टाऊ क्या है?

- वृत्त की परिधि को उसके व्यास से भाग देने पर जो मान आता है, उसे पाई कहते हैं। इसकी वैल्यू 22/7 या 3.14 होती है।
- टाऊ की वैल्यू पाई से दोगुनी है। यानी 6.28 होती है।

दैनिक भास्कर, इन्दौर के 29.06.11 के अंक में एक समाचार **अब पाई की जगह टाऊ चाहते है गणितज्ञ** प्रकाशित हुआ। यह समाचार अविकल रूप से यहां प्रकाशित है। श्री अनिल चौहान, इन्दौर अनेक वर्षों से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर आते हैं। वे सदैव नई–नई जिज्ञासाएं लेकर आते है। इस समाचार पर वे खासे उत्साहित हैं तथा उन्होंने हमें जो बताया वह निम्नवत् है।

'इस समाचार में वर्णित गणित की इस विधा जिसे फिलहाल π द्वारा व्यक्त किया जा रहा है तथा गणितज्ञ तथा वैज्ञानिक जिसे और अधिक शुद्ध रूप अर्थात् टाऊ के रूप में उपयोग हेतु चाहते हैं परंतु वर्तमान π पद्धति से इसे प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। इसका सबसे सरल शुद्ध और तार्किक हल मेरे पास है। लन्दन से प्रकाशित अखबार 'डेली मेल' में छपी एक खबर के अनुसार लीड्स वि.वि. के स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स के गणितज्ञ कैविन ह्यूस्टन के अनुसार सालों से हम π का उपयोग कर रहे हैं जिससे सही उत्तर नहीं मिलता। π परिमेय संख्या नहीं है, जिसे वृत्त की परिधि के साथ जोड़ा जाए। सही अंक हैं 2 π या 'टाऊ', उनके अनुसार गणितज्ञ कोण को डिग्री में नहीं नापते उसे रेडियन में नापा जाता है, एक वृत्त में 2 पाई रेडियन होते हैं। इसलिए वृत्त के एक चौथाई हिस्से में $\frac{\pi}{2}$ रेडियन होता है लेकिन वृत्त के तीन चौथाई हिस्से को आधा नापने में कठिनाई हो सकती है। टाऊ के प्रयोग से आधे वृत्त को आधा टाऊ एक चौथाई हिस्से को एक चौथाई टाऊ और ऐसे ही अन्य हिस्सों को नापा जा सकता है तथा जिसमें एक टाऊ 6.28 होना चाहिए।

मैंने मैजिक स्क्वेयर $\sqrt{19}$ के ऊपर किये गये अपने लगभग 20 वर्षीय शोध के पश्चात एक रहस्यमयी अंक श्रंखला प्राप्त की है जिसके द्वारा उपरोक्त टाऊ को सरल, शुद्ध और विस्तृत रूप से प्राप्त किया जा सकता हे। इसी से π भी निकाला जा सकता है। आईये देखें कैसे–

मेरे पास एक मैजिक स्क्वेयर से प्राप्त एक मैजिक नम्बर है।

6804.684, अब अगर इसमें 361 (=19^2) का भाग दिया जाए तो प्राप्त होंगे - 18.849 तथा इसमें केवल संख्या 3 का भाग दिया जाए तो एक शुद्ध अंक समूह प्राप्त होता है जिसे उपरोक्त ब्रिटिश गणितज्ञ महोदय भविष्य के शोध हेतु श्रेष्ठ बता तो रहे हैं परंतु जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं है।

टाऊ यह अंक हमें उपरोक्त श्रृंखला से सरलता से प्राप्त होता है।

यह इस प्रकार है –

A- 6804.684 ÷ 361= 18.849 = 3 टाऊ

B- 18.849 ÷ 3 = 6.283 = 1 टाऊ

C- 6.283 ÷ 4 = 1.5775 = $^1/_4$ टाऊ

D- 1.5775
 + 1.5775
 + 1.5775
 4.7325 = 4.7325 = 3/4 टाऊ

इस प्रकार से मैं संक्षेप में निवेदन करना चाहता हूँ, कि भविष्य के उपरोक्त टाऊ के शुद्ध हल मेरे पास वर्तमान में हैं।'

✻ म. नं. 752, गली नं. 9, नेहरूनगर,
इन्दौर - 452001

Jain Leadership Conference

Jain Leadership conference is being organized in January 2012 at Mumbai and Delhi. The objective of this conference is to enhance fraternity and belonging in members of Jain community globally; mutual support by providing information and follow up services subjects such as on social integration, education and health to fellow Jains so that each member of the community can become educated, employed, happy, and economically self reliant. Along with the intent is to enable Jain institutions engaged in these activities upgrade their technological and management capabilities to have greater and effective reach to members of neighbouring communities serviced by these institutions.

To achieve these worthy objectives, JAINA intends to promote a dialogue with fellow Jains, both individuals and institutions involved in these activities as well as providing financial support to such efforts. Based on these interactions we intend to foster the *Sarvodaya tirth* of Lord Mahavira for the betterment of all Jains and their fellow neighbouring community members. You are therefore invited and requested to come forward and get involved in taking the three principles of Jainism, namely *Ahinsa, Anekant* and *Aparigraha* globally by providing information and interest about you, Jain institution and people known to you.

Your Suggestions are most welcome. For more information and to get involved, please contact :

Convenors in India

Mumbai
Sh Mahendra G. Mehta
Email : mahendragmehta@gmail.com

Delhi
Dr. Shugan Jain
Email : svana@vsnl.com

वीर शासन जयंती राष्ट्रीय व्याख्यानमाला

वीर सेवा मंदिर (जैनदर्शन शोध संस्थान), दरियागंज - नई दिल्ली, ज्ञान एवं शोध का कल्पवृक्ष बनकर विगत81 वर्षों से, अपने समृद्ध पुस्तकालय के माध्यम से श्रुत-सेवा के लिए संकल्पित है। इस वर्ष 17 जुलाई, 2011 को वीर शासन जयंती के पावन प्रसंग पर,वीर सेवा मंदिर में एक राष्ट्रीय व्याख्यानमाला का भव्य आयोजन हुआ।

व्याख्यानमाला समारोह की अध्यक्षता प्रो. समणी चारित्रप्रज्ञा जी, कुलपति - जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ (राज.) ने की। आपका भावभीना सम्मान शॉल, खण्ड वस्त्रादि से संस्था के अध्यक्ष श्री सुभाष जैन (शकुन प्रकाशन) ने किया। आपके साथ समणी आगम प्रज्ञा जी भी पधारीं थीं। समणी आगम प्रज्ञा जी का स्वागत संस्थान के महामंत्री श्री विनोद कुमार जैन ने परंपरागत ढंग से किया।

समारोह के प्रारंभ में दीप प्रज्वलन - समारोह की अध्यक्ष समणी प्रो. चारित्रप्रज्ञा जी, अध्यक्ष एवं महामंत्री-वीरसेवा मंदिर तथा वक्ता के रूप में बाहर से आये विद्वत् गणों ने किया। जिनवाणी माँ को अर्ध्य समर्पण करके स्तुति का सस्वर वाचन पण्डित डॉ. मुकेश जैन, पं. आलोक जैन के किया। व्याख्यानमाला का शुभारंभ प्रो. कमलेश कुमार जैन, (बी.एच.यू .) वाराणसी के मंगलाचरण से हुआ।

वीर सेवा मंदिर के अध्यक्ष श्री सुभाष जैन ने संस्थान का परिचय देते हुए इसकी स्थापना का इतिहास एवं उद्देश्य बताया। आपने कहा कि वर्तमान में संस्थान के पुस्तकालय में 7 हजार से अधिक ग्रंथ एवं 167 हस्तलिखित ग्रंथ मौजूद हैं साथ ही 50 से अधिक ग्रंथों का संस्थान अभी तक प्रकाशन कर चुका है। आपने शोध संस्थान के संस्थापक, विद्या के महार्णव पं. जुगलकिशोर जी 'मुख्तार' साहब का स्मरण करते हुए अन्यान्य विभूतियों के नामों का उल्लेख किया जिन्होंने इस संस्थान को समय-समय पर अपनी सेवाएं देकर इसके उत्कर्ष एवं उत्थान में महती भूमिका निभायी।

प्रथम वक्ता के रूप में प्रो. कमलेश कुमार जैन ने वीर शासन जयंती क्या है ? और यह श्रावण कृष्ण एकम् को क्यों मनाई जाती है ? का पौराणिक आख्यान के आधार पर चर्चा करते हुए बताया कि आज के दिन भगवान महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि, केवलज्ञान (पूर्ण ज्ञान) होने के 66 दिन बाद खिरी थी। क्योंकि उन लोकोत्तर अर्हन्त परमेष्ठी भ. महावीर को भी एक योग्य शिष्य की तलाश थी जिनके बिना दिव्यध्वनि के खिरने का योग नहीं हो पा रहा था। आपने प्राकृत भाषा के विकास के लिए सुझाव दिया कि प्राकृत गाथानुक्रमणिका का संवर्द्धित / संशोधित संस्करण का पुन: प्रकाशन होना चाहिए। आपने अनुपलब्ध आगम ग्रंथों के प्रकाशन पर जोर दिया। इस समारोह में समणी, सरस्वती पुत्र एवं श्रीमन्त यह त्रिकुटी विराजमान है, जिन पर श्रुत के संरक्षण का उत्तरदायित्व है।

द्वितीय वक्ता के रूप में प्रो. सुदीप जी ने प्राकृत भाषा के विकास एवं षट्खण्डागम के विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में कहा कि प्राकृत भाषा कालगत भाषा है। कुछ कुतर्कवादियों ने जब यह कहा कि यह बाल, स्त्री व मूर्खों की भाषा है तो भगवान महावीर ने कहा - सही है इन्हीं को सुनाने और समझाने के लिए यह सहज - भाषा है। गुरुकुलों में पांच प्रकार के आचार्य हुआ करते थे उनमें उच्चारणाचार्य, व्याख्यानाचार्य आदि होते थे जो सही पद का सही उच्चारण एवं अर्थ बताते थे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्राकृत ग्रंथों की संस्कृत छाया करने से प्राकृत भाषा का भला नहीं हो सकता।

होना यह चाहिए कि संस्कृत ग्रन्थों की प्राकृत छाया हो।आज समाज में एक भी प्राकृत पाठशाला नहीं । जबकि हमारे जैनागमों की मूल भाषा - प्राकृत भाषा है ।

तृतीय वक्ता के रूप में भाषा विज्ञान के विद्वान प्रो. वृषभप्रसाद जी ने श्रमण और वैदिक परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा कि दोनों परम्पराओं ने अपनी भाषा के विज्ञान को विकसित किया है और एक परम्परा ने दूसरे की परंपरा को (खासकर भाषा के क्षेत्र की) देखना प्राय: बन्द कर दिया है। संस्कृत को अपेक्षाकृत ज्यादा महत्व दिया गया और पाली/ प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा को अछूत की तरह व्यवहृत किया गया। भगवान महावीर की भाषा - केवल अर्धमागधी नहीं थी। उनकी दिव्यध्वनि बीज पद रूप सर्वभाषामयी थी अर्थात् सर्वमागधी भाषा थी। प्राकृत भाषा पर केवल जैनों की बपौती नहीं है। हाँ ! यह जैनों की पहचान - भाषा हो सकती है। प्राकृत भाषा- अखण्ड भारत का प्रतिनिधित्व करती है। वस्तुत : महावीर ने वह सब कहा जो मनुष्य के काम का था मनुष्य के कल्याण का था।

उपसाला यूनिवर्सिटी स्वीडन के प्रो. हैन्ज बैसलन ने भी हिन्दी में संक्षिप्त भाषण दिया और कहा मनुष्य चाहे तो हर भाषा को सीख सकता है। आप स्वीडन में संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के प्रोफेसर हैं। उन्होंने कहा कि भाषा विशेष से हमारी सोच में परिवर्तन होता है। कार्यक्रम के संचालक विद्वान डॉ. जयकुमार जैन , संपादक 'अनेकान्त' एवं अध्यक्ष - अ.भा. विद्वत् परिषद ने टिप्पणी करते हुए कहा कि प्रो. वैसलर साहब की हिन्दी सुनकर हम सभी को बड़ी प्रसन्नता और प्रेरणा मिली है।

इतनी अच्छी हिन्दी बोलकर आपने संसद का मन मोह लिया। प्रो बैसलर ने कहा कि मुझे अभी जैन दर्शन का अध्ययन ज्यादा नहीं है परन्तु दो वर्ष के भीतर प्राकृत का प्रवेश पाठ्यक्रम विश्वविद्यालय में स्थापित करने का संकल्प करता हूँ। संस्थान के महामंत्री जी ने आपको एवं डॉ. अफरीदी को वैरिस्टर चम्पतराय जी की पुस्तक 'Key of Knowledge' एवं Jain Bibliography (छोटेलाल जैन) की प्रतिया, भेंट स्वरूप प्रदान की।

मुख्य अतिथि के रूप में दि. जैन . कालेज बड़ौत में संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. श्रेयांस कुमार जैन ने 'वीर शासन जयंती ' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर चर्चा करते हुए कहा कि आज से भगवान महावीर का तीर्थकाल प्रवर्तित हुआ इसके पूर्व 250 वर्ष तक भ. पार्श्वनाथ का शासनकाल रहा। उन्होंने कहा कि अर्हन्त भगवान की भाषा 'बीजपद' रूप होती है जिसमें अनन्त अर्थ गर्भित होते हैं। गणधर- उन बीज पदों की व्याख्या करके ग्रंथों का प्रणयन करता है। मुख्य अतिथि ने कहा कि हमें आगम शास्त्र के अनुसार ही अपना मत बनाकर व्याख्यान करना चाहिए। ऐसा न करके कुछ लोग अपने मत के अनुसार शास्त्रों को टटोलकर आधी अधूरी बात उसमें से निकालकर प्रस्तुत करते रहे हैं।

शोध- उपसमिति के सदस्य श्री रूपचंद कटारिया ने भी संक्षेप में भाषण द्वारा डॉ. श्रेयांस जी के व्याख्यान की अनुमोदना की। व्याख्यानमाला का समापन करते हुए समणी प्रो. चारित्र प्रज्ञा जी ने अपना मार्मिक व्याख्यान देते हुए कहा कि हमें अपने मनभेद और मतभेद दोनों को, समन्वय बिन्दुओं पर स्वीकृति देते हुए, दूर करना चाहिए। उन्होंने कहा कि जब तक सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों साथ साथ नहीं चलते, तब तक सम्यक्चारित्र पैदा नहीं होता। आज विश्व को यह सदन पूरी तरह आश्वस्त करता है कि जैन धर्म एक स्वतंत्र धर्म है न तो यह हिन्दू धर्म की शाखा है और न ही बौद्ध धर्म का अपर रूप है। उन्होंने आगे बोलते हुए कहा कि जहाँ नय, निक्षेप है वहां अनेकान्त है

और जहां अनेकान्त है वहां फिर कोई आग्रह नहीं है।

पुस्तकालयों के ग्रंथ- केवल प्रदर्शन की वस्तु न रह जावें बल्कि वे ज्ञान प्रकाश का माध्यम बनें। आज का बालक तर्कशील हो गया है। माता-पिता यदि स्वाध्याय नहीं करेंगे , तो उनकी संतान जैनधर्म के प्रति कतई अभिरुचि नहीं दिखायेगी। संकल्प करें कि हम स्वाध्याय करेंगे।

अन्त में आभार प्रदर्शन - संस्थान के मंत्री श्री योगेश जैन ने किया। कार्यक्रम के पश्चात् सम्मानीय अतिथियों के सत्कार में स्वल्पाहार रखा गया। संस्थान समय समय पर इस प्रकार गौरवपूर्ण व्याख्यान मालाओं का आयोजन करके ज्ञान की धरा को प्रवर्तमान किये हुए है। विशेष बात यह भी रही कि इसमें श्रोता-विद्वानों को भी आमंत्रित किया गया जिनकी संख्या लगभग 60 थी।

पं. निहालचंद जैन
निदेशक

श्रीमती सरिता महेन्द्र कुमार जैन 'कुन्दकुन्द भारती ' की ट्रस्टी मनोनीत

श्रीमती सरिता महेन्द्र कुमार जैन, चैन्नई को सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज ने देश की प्रख्यात शोध संस्था ' कुन्दकुन्द भारती ' का ट्रस्टी मनोनीत किया है ।

कुन्दकुन्द भारती दिल्ली के प्राकृत भवन में स्थित है। यहाँ से प्राकृत विद्या शोध पत्रिका का प्रकाशन होता है। आचार्यश्री के सानिध्य में त्यागीजन प्राकृत ग्रन्थों पर शोध करते हैं। खारवेल भवन में एक वृहद ग्रन्थालय की शोध कार्यों के लिए स्थापना की गई है।

श्रीमती सरिता जैन चैन्नई के अग्रणी उद्योगपति और तीर्थ समर्पित समाजसेवी श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ संरक्षिणी महासभा के राष्ट्रीय कार्यध्यक्ष श्री महेन्द्र कुमार जैन की धर्मपत्नी हैं ।वह देश की प्रख्यात समाजसेवी और धर्मपरायण श्राविकारत्न हैं, जिन्होंने 350 प्राचीन तीर्थों का संरक्षण-संवर्धन स्वत: से किया है ।वह देश की प्रमुख दिगम्बर जैन संस्थाओं द्वारा सम्मानित हुई हैं ।वह श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला महासभा की राष्ट्रीय अध्यक्षा, भारतवर्षीय तीर्थक्षेत्र कमेटी की उपाध्यक्षा से साथ साथ देश की गणमान्य संस्थाओं की ट्रस्टी और बोर्ड सदस्य हैं।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से उन्हें हार्दिक बधाई।

Congratulation

Dr. (Mrs) Ujwala Nandkumar Dongaonkar has received Ph.D. degree from RTM Nagpur University, recently. The topic of her research was 'On the scientific study of Karma paramāṇu from Jaina Canonical texts. For the research she obtained the Guidance of Dr. Kamal Singh, former V.C. of Amravati University. She is working as an Assistant Profesor in G.H. Raisoni College of Engineering, Nagpur.

डॉ. महावीर शास्त्री को राष्ट्रपति सम्मान घोषित

महामहिम राष्ट्रपति भारत सरकार द्वारा मानव संसाधन मंत्रालय की ओर से पुरस्कृत 2011 वर्ष का 'महर्षि बादरायण व्यास सम्मान' प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. महावीर प्रभाचंद्र शास्त्री, सोलापुर को घोषित हुआ है। 15 अगस्त के दिन इसकी अधिकृत घोषणा की गई। संस्कृत, पर्शियन, अरेबिक, पाली/प्राकृत इन प्राच्य भाषाओं द्वारा विशेष योगदान देने वाले विद्वानों को यह पुरस्कार दिया जाता है। 65 वर्ष से अधिक आयु के विद्वानों को जीवन गौरव एवं 40 वर्ष से कम उम्र के विद्वानों को विशेष उल्लेखनीय कार्य हेतु यह पुरस्कार दिया जाता है। मा. राष्ट्रपति द्वारा एक लाख रुपये, सम्मान चिन्ह एवं प्रशस्ति ऐसा इस पुरस्कार का स्वरूप है। विविध विश्वविद्यालय के कुलपति, शिक्षा सचिव, सम्मान पात्र विद्वत्गण आदि इस पुरस्कार समिति के सदस्य होते हैं।

विविध भाषाओं का ज्ञान, प्राकृत भाषा एवं जैन दर्शन के प्रचार व पुनरुत्थान हेतु प्रयत्न, ऑस्ट्रेलिया में विश्व शांति परिषद में जैन धर्म का प्रतिनिधित्व, सिडनी के सेमिनार में प्राकृत विषय पर शोध निबंध प्रस्तुति, टोरोन्टो कनाडा में व्याख्यान श्रृंखला, प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का जतन, प्राकृत शिक्षा शिविर आदि अनेक विशेषताओं हेतु डॉ. महावीर शास्त्री को यह पुरस्कार घोषित हुआ है। आगामी 26 जनवरी को राष्ट्रपति भवन में इस पुरस्कार का वितरण होगा। इससे पूर्व डॉ. महावीर शास्त्रीजी को दक्षिण भारत जैन सभा द्वारा आचार्य कुंदकुंद पुरस्कार, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्राकृत भाषा विशारद आदि अनेक पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है। वर्तमान में शास्त्रीजी वालचंद महाविद्यालय, सोलापुर में प्राकृत संस्कृत विभाग के प्रमुख पद पर कार्यरत है तथा 128 वर्ष प्राचीन पत्रिका जैन बोधक के भी मानद सम्पादक है।

प्रतिष्ठाचार्य महावीर शास्त्रीजी का जैन दर्शन, ज्योतिष, वास्तु शास्त्र, पूजाविधान एवं प्राकृत संबंधी प्रारंभिक ज्ञान परमपूज्य आचार्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज के निर्देशन में श्री कुंदकुंद भारती, दिल्ली में पूर्ण हुआ है। डॉ. उदयचंद जैन, उदयपुर के मार्गदर्शन में पीएच.डी. प्राप्त की है। स्व. पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री जी के पोते श्री महावीर शास्त्री जी ने पंडित परंपरा बरकरार रखते हुए अनेक क्षेत्रों के पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं के साथ ही इस पुरस्कार की विशेष उपलब्धि प्राप्त की है।

तरुण क्रांति पुरस्कार - 2011

श्रीमती मेनका गांधी, डॉ. वीरेन्द्र हेगड़े व श्री गुलाम कोठारी को दिया गया

तरुण क्रांति मंच नईदिल्ली की ओर से हर वर्ष दिया जाने वाला तरुण क्रांति अवार्ड पूज्य मुनिश्री क्रांतिकारी राष्ट्रसंत तरुणसागरजी के सान्निध्य में बी.एन. कॉलेज ग्राउंड उदयपुर में एक विराट जनसभा में देश की नामचीन हस्तियों को 10 अगस्त 2011 को उदयपुर में प्रदान किए गए। जीव दया व शाकाहार के लिए सांसद मेनका गांधी (दिल्ली) को, समाज सेवा व जैन समुदाय के रोल मॉडल के लिए पद्मभूषण डॉ. डी. वीरेन्द्र हेगड़े (धर्मस्थल) को तथा साहित्य, आध्यात्म एवं सकारात्मक चिंतन के लिए विख्यात विचारक व राजस्थान पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्री गुलाब कोठारी (जयपुर) को प्रदान किया गया। गत वर्ष यह पुरस्कार भोपाल में डॉ. किरण बेदी, (दिल्ली) व दैनिक भास्कर समूह के चेयरमेन श्री रमेश अग्रवाल (भोपाल) को दिया गया था।

तरुण क्रांति मंच ट्रस्ट दिल्ली के अध्यक्ष विजेन्द्र कुमार जैन, महामंत्री धर्मपाल जैन, कोषाध्यक्ष प्रणव कुमार जैन एवं ट्रस्टी एड. सुनील कुमार जैन ने इन शख्सियतों को स्मृति चिन्ह, अभिनंदन पत्र व 51 हजार रुपए के साथ ही शॉल, माला व श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया। तरुण अवार्ड काउंसिल के अध्यक्ष डॉ. उज्ज्वल पाटनी (दुर्ग) ने पुरस्कृत अतिथियों का परिचय देकर अभिनंदन

पत्र का वाचन किया तथा उनकी विशिष्ट सेवाओं व कार्यों से सभा में मौजूद हजारों लोगों को परिचय कराया। समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में दैनिक भास्कर समूह के सम्पादक श्री श्रवण गर्ग भी मौजूद थे।

सभा में श्रीमती मेनका गांधी ने अपने भाषण में कहा कि यद्यपि मैं जन्म से जैन नहीं हूँ पर कर्म से जैन हूं। उन्होंने इच्छा जताई कि वे अगले जन्म में जैन कुल में जन्म लेना चाहती है। धर्माधिकारी डॉ. वीरेन्द्र हेगड़े ने कहा कि महाराज श्री जब बैंगलोर में थे तो उन्होंने कहां था कि हेगड़े जी ! आपने समाज सेवा तो बहुत की है लेकिन बैंगलोर शहर के लिए क्या किया ? आज मुझे महाराजजी के समक्ष यह कहते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि आपकी प्रेरणा के बाद हम वहां आयुर्वेदिक कॉलेज खोलने जा रहे है। इसके लिए हमने जमीन भी ले ली है। डॉ. गुलाब कोठारी ने कहा कि नया सृजन हमेशा समर्पण मांगता है। श्री श्रवण गर्ग ने बताया कि देश में अत्याचार, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। ऐसे में मुनिश्री तरुणसागरजी जैसे संत ही हैं जिनमें हम इस समस्या का समाधान देखते हैं।

महावीर पुरस्कार वर्ष-2011 एवं
ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार - 2011

प्रबन्धकारिणी कमेटी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान, श्री महावीरजी के वर्ष 2011 के महावीर पुरस्कार के लिए जैनधर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित किसी भी विषय की पुस्तक की चार प्रतियाँ दिनांक आमन्त्रित हैं। इस पुरस्कार में प्रथम स्थान प्राप्त कृति को 31001 रुपये एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार 5001 रुपये एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। 31 दिसम्बर, 2006 के पश्चात् प्रकाशित पुस्तक ही इसमें सम्मिलित की जा सकती हैं।

स्वयंभू पुरस्कार-2011

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष-2011 के स्वयंभू पुरस्कार के लिए अपभ्रंश से सम्बन्धित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियाँ आमन्त्रित हैं। इस पुरस्कार में 21001 रुपये एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। 31 दिसम्बर, 2006 से पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियाँ सम्मिलित नहीं की जायेगी।

नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ, भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड़, जयपुर-4 से पत्र व्यवहार करें।

डॉ. कमलचन्द सोगाणी

राष्ट्रसंत पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी के सानिध्य में

शास्त्रि परिषद का अधिवेशन सम्पन्न

15-19 जून 2011 के मध्य श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर, गुलालवाड़ी, बुम्बई में अ.भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद का वार्षिक अधिवेशन पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी के ससंघ सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। अधिवेशन को संबोधित करते हुए पूज्य उपाध्याय श्री ने कहा कि 'श्रावक सच्चे देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करें, पंथ वर्ग से ऊपर उठकर लोगों को कार्य करना चाहिए। विसंगतियां भगवान आदिनाथ के समय में भी थीं। मारीचि ने अपना मत अलग चलाया था। मतभेद, मनभेद में न बदलें। समयसार पढ़कर जीवंत बनें और अशुभ आस्रव का बंध न हो ऐसा प्रयास सभी को करना चाहिए।

शास्त्रि परिषद् के माध्यम से विद्वान अच्छा कार्य कर रहे हैं। विद्वानों ने सुप्त शक्तियों को जगाने का कार्य किया है। समता और अनेकांत तथा स्याद्वाद के सिद्धान्तों के विश्व में प्रचार-प्रसार के लिए हम सभी मिलकर कार्य करें।

प्रचार मंत्री डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन सनावद ने बताया कि उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज एवं क्षुल्लक प्रयत्न सागर जी महाराज की उपस्थिति में पंच दिवसीय विद्वत् प्रशिक्षण शिविर, पुरस्कार वितरण तथा वार्षिक कार्यकारिणी की बैठक तथा वार्षिक अधिवेशन के कार्यक्रमों के दौरान तत्वार्थ सूत्र, दशलक्षण धर्म तथा आगमिक सिद्धांत एवं वास्तुशास्त्रों पर प्रशिक्षण, प्रवचन प्रशिक्षण के साथ परिषद् का अधिवेशन डॉ. श्रेयांस कुमार जैन बड़ौत की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

महामंत्री ब्र. भैया जयनिशांत जी टीकमगढ़ द्वारा गत वार्षिक अधिवेशन की रिपोर्ट प्रस्तुति उपरांत संयुक्त मंत्री विनोद जैन रजवास ने शास्त्रि परिषद् के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए इसे देव, शास्त्र गुरु के प्रति समर्पित ऐसी संस्था बताया जो एकान्तवाद का तीव्र विरोध करती है। डॉ. वृषभ प्रसाद जैन लखनऊ ने विद्वानों के श्रमसाध्य कार्य की सराहना करते हुए उन्हें आगम का पारायण करने की प्रेरणा दी और समाज का आह्वान किया कि उन्होंने मन्दिर और तीर्थ तो बहुत बनाये अब इस ओर ध्यान देना चाहिये कि शिक्षण शिविरों, जिनवाणी के प्रकाशन, पुस्तकालयों की स्थापना व शास्त्र तीर्थों को बनाने की पहल करें।

शास्त्रि परिषद् के हर कार्य में पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के योगदान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन ने बताया कि प्रतिभा सम्मान, विद्वत् सम्मेलन, वकीलों के सम्मेलन, विद्वानों के सम्मान जैसे महत्वपूर्ण कार्य श्रुत संवर्द्धन संस्थान मेरठ करता है। इस कड़ी में अब संस्थान ने देश की महत्वपूर्ण संस्था या प्रमुख व्यक्ति को 5 लाख तथा वैज्ञानिकों को एक-एक लाख के नगद पुरस्कार की घोषणा की। दशलक्षण पर्व पर विद्वानों को प्रवचन के माध्यम से प्रेरणा देने वाले आ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद् के महामंत्री डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' बुरहानपुर को एवं पं. अमृतलाल जी, दमोह को समाज श्रेष्ठी अमरचंद स्मृति पुरस्कार, डॉ. भागचन्द 'भागेन्दु' को पं. प्रसन्न कुमार स्मृति पुरस्कार, श्री कपूरचंद घुवारा को श्री मिश्रीलाल बैनाड़ा पुरस्कार, स्व. श्री फूलचंद सेठी स्मृति पुरस्कार श्री हंसमुख जी धरियावद एवं डॉ. नरेन्द्र जैन को एवं पं. रामस्वरूप जैन शास्त्री पुरस्कार (प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन द्वारा प्रदत्त) डॉ. सनत कुमार जैन, जयपुर, को प्रदान किये गये। श्री फूलचंद सेठी पुरस्कार श्री कपूरचंद जैन गौहाटी (सम्पादक-जैन गजट) तथा पं. सिंहचन्द शास्त्री, चेन्नई पं. बच्चूलाल जैन, पं. शीतलचंद जैन एवं पं. राजकुमार जैन को भी प्रदान किये जायेंगे। पुरस्कृत विद्वानों को तिलक, माल्यार्पण, श्रीफल, शास्त्र, प्रशस्ति पत्र के साथ ग्यारह-

ग्यारह हजार की धनराशि भेंट कर सम्मानित किया गया। जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर प्रदीप, दिव्याणी (उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी के प्रवचनों की सी.डी.) प्रतिष्ठा पराग–ब्र. जयनिशांत जी प्रतिष्ठाचार्य तथा शास्त्री परिषद के बुलेटिन का विमोचन समाज सेवियों द्वारा किया गया। शास्त्री परिषद द्वारा– जैन विश्वविद्यालय की स्थापना, शास्त्रि परिषद् के खिलाफ अनुचित टिप्पणी पर सदस्यता समाप्ति, प्रत्येक सदस्य द्वारा अपने गृह नगर में वर्ष में कम से कम एक धार्मिक आयोजन करने, पाठशाला के खुलवाने में सहयोग, सन्दर्भित प्रस्ताव कार्यकारिणी की स्वीकृति के उपरांत साधारण सभा में पारित किये गये। श्वेताम्बर जैन समाज के प्रमुख विचारक श्री रमेश जी नंदा मुम्बई ने बताया कि उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी के विचारों से प्रभावित होकर प्रेम, भाईचारा, और सद्‌भावना के सन्देश को लोगों के पास पहुँचायें।

शास्त्रि परिषद् द्वारा अभी तक सर्वसम्मति से अध्यक्ष बनाये जाने की प्रशंसा करते हुए मुख्य अतिथि श्री अरविंद भाई दोशी ने संस्थाओं से इसी तरह सर्वसम्मति से कार्य करने की प्रेरणा देते हुए कहा कि विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

पूज्य क्षुल्लक श्री प्रयत्न सागर जी महाराज ने जिनवाणी और आध्यात्म के प्रचार-प्रसार में पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं शास्त्रि परिषद् के विद्वानों की इस बात के लिए सराहना की कि उन्होंने जैन परम्परा से भूले-भटके लोगों को मूलधारा में लाने का सराहनीय प्रयास किया है। भगवान जिनेन्द्र देव के समकक्ष किसी को न रखने तथा वीतराग देव की परम्परा के पोषक बनने की पुरजोर अपील करते हुए परिषद् के यशस्वी अध्यक्ष डॉ. श्रेयांस जैन बड़ौत ने बताया कि शास्त्रि परिषद् पंथवाद के ऊपर रही है परन्तु देव-शास्त्र-गुरु के संरक्षण की भी उसकी जिम्मेदारी है। जैन शासन की गद्दी पर बैठकर लोगों को असत्य का प्रलाप नहीं सत्य का प्रचार करना चाहिए। आगम में न तेरापंथ हैं न बीसपंथ उसमें तो सिर्फ एक ही पंथ है वह है आगमपंथ। तीर्थंकरों के साथ अन्य देवी-देवताओं को समकक्ष रखकर अभिषेक करना ठीक नहीं है। देवी-देवताओं के सम्मान में कोई आपत्ति नहीं है। आपने लोगों से उन्माद का हिस्सा न बनने तथा मूल मान्यताओं के प्रचार-प्रसार हेतु सभी विद्वानों तथा समाज से कार्य करने की पुरजोर अपील की ताकि सामाजिक एकता बनी रह सके। कार्यक्रम का संचालन ब्र. जयनिशांत व पं. विनोद जैन रजवांस ने किया।

अर्हत् वचन सदस्यता शुल्क

	भारत		विदेश
	व्यक्तिगत	संस्थागत	
वार्षिक	150=00	250=00	US$20=00
10 वर्षीय	1500=00	2500=00	US$ 200=00
आजीवन/सहयोगी	2100=00	--	US$ 300=00

नोट - चेक कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के नाम इन्दौर में देय भेजें।

National Seminar on Advances in Mathematics : Historical Developments & Engineering Applications

New Vallabha Vidya Nagar, January 9-11, 2012

The seminar will cover all aspects of the history of Mathematical Sciences and their recent developments including Mathematics, Statistics, Operation Research, Computer Science and Applications to Engineering and Applied Sciences. In particular, the conference will focus on the following areas :

1. General Histories, Source Books and Biographies of Mathematicians.
2. Mathematics and Indigenous Cultures of the World.
3. Ancient Indian Mathematics.
4. Mathematics during 15th to 18th Centuries, Renaissance.
5. The 19th and 20th centuries Mathematics.
6. History of Mathematics in Educational Curricula.
7. Mathematics and Engineering Sciences.
8. Mathematics and Physical Sciences
9. Chaos and fractals
10. Recent Developments in Mathematics and Future Prospects.

The academic sessions will include invited/plenary talks as well as contributed paper presentations.

Papers pertaining to the topics listed above areas are invited for the conference. Abstracts of the papers should be submitted by November 30, 2011, and the full versions should be sent by December 15, 2011.

The Registration fee of Rs. 1200/- for each participant is payable latest by 15th December 2011. All payments should be made either by a Local Cheque or a Demand Draft drawn in favor of Principal, ICCT (W) and payable at V.V. Nagar, Gujarat. For accompanying persons and research scholars, the registration fee is Rs. 600/- and Rs. 800/- respectively. New Vallabha Vidya nagar is about 8 km. from Anand & 45 km. from Badodra (Gujarat). It is well connected by Roads & Rail.

All communications for academic aspects should be addressed to :

Jamanadas R. Patadia
5, Arjun Park, Near Patel Colony, Shivananda Marg, Vadodara-390 007
Email : jamanadaspat@gmail.com, Mob : +91-96017 23515

or

Mahesh C. Joshi
Department of Mathematics, Kumaun University, Nainital, U.K. 263002
Email : mcjoshi69@gmail.com, Mob. : +91-94124 38601

All communications regarding local organization :

Darshana J. Prajapati
Organizing Secretary (NSAM-2012),
Department of Mathematics,
Madhuben & Bhanubhai Patel Women Institute of Engineering. New Vallabh Vidyanagar
P.O. Box #8, Gujarat - 388 121, Email : dpdarshana786@gmail.com
Tel : +91-2692-230880, 230824 Fax : +91-2692 230923
Mob. : +91-94285 - 64021

छठा प्राकृत दीक्षांत समारोह सम्पन्न

श्रवणबेलगोला में 27 अगस्त, 2011 को बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ, श्रवणबेलगोला द्वारा संचालित राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान का छठा प्राकृत दीक्षान्त समारोह 27 अगस्त, 2011 को भव्य आयोजन के साथ सम्पन्न हुआ।

समारोह की मुख्य अतिथि डॉ. सलोनी एन. जोशी, विभागाध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद ने अपने दीक्षान्त भाषण में प्राकृत भाषा के विकास और शिक्षण की आवश्यकता पर विस्तार से प्रकाश डाला। आपने कहा कि प्राकृत भाषा के विभिन्न प्रयोग और लोक जीवन का चित्रण इस बात के परिचायक है कि प्राकृत भाषा लोक से जुड़ी रही है। प्राकृत भाषा का अध्ययन भारत के सांस्कृतिक स्वरूप को पहचानने के लिए अनिवार्य है। बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ, श्रवणबेलगोला द्वारा प्राकृत के विद्यार्थियों का तैयार करना एक प्रकार से भारतीय भाषाओं का संरक्षण एवं देशसेवा का कार्य है। परमपूज्य स्वामी जी का यह प्रयत्न भारतीय भाषाओं के विकास के क्षेत्र में अपूर्वयोगदान होगा। डॉ. सलोनी जोशी जी ने अपने दीक्षान्त भाषण के पूर्व सत्र 2010-11 की प्राकृत परीक्षाओं के विशेष योग्यता प्राप्त विद्यार्थियों को पद एवं प्रमाण-पत्र प्रदान किये।

संस्थान के निदेशक प्रो. डॉ.प्रेम सुमन जैन और परीक्षा विभाग प्रमुख डॉ. एम.ए. जयचन्द्र ने अतिथियों का स्वागत किया एवं बताया कि विद्यापीठ की इन प्राकृत की परीक्षाओं में लगभग 650 विद्यार्थी सम्मिलित हुए हैं। उन्होंने इन सफल विद्यार्थियों को प्राकृत भाषा एवं साहित्य के विकास में सहयोगी होने की शपथ (प्रमाण वचन) भी दिलाई।

प्राकृत-कन्नड़ के परीक्षा प्रभारी डॉ. सी.पी. कुसुमा ने कन्नड़ माध्यम के विद्यार्थियों पदक एवं प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए प्रस्तुत किया तथा प्राकृत-हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्ष श्रीमती डॉ. सरोज जैन एवं परीक्षा श्री राजेन्द्र पाटील ने हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों को प्रस्तुत किया।

विशेष योग्यता प्राप्त इन विद्यार्थियों को इस दीक्षान्त समारोह के विशेष अतिथि कर्नाटक जैन एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री एस. जीतेन्द्रकुमार एवं पूर्व मन्त्री, केरल सरकार, श्री वीरकुमार पाटील ने प्रमाण पत्र प्रदान किये।

समारोह के अतिथियों, विद्वानों एवं संयोजकों का विद्यापीठ के ट्रस्टीजनों के द्वारा हार्दिक सम्मान किया गया। समारोह के अध्यक्ष माननीय श्रीमान् एम.जे. इन्द्रकुमार जी, बैंगलूरु ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ की गतिविधियों और भावी योजनाओं पर प्रकाश डाला। आपने बताया कि परमपूज्य जगद्‌गुरु कर्मयोगी स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक महास्वामी जी के दिव्यमार्गदर्शन तथा निदेशक प्रोफेसर डॉ. प्रेम सुमन जैन के प्रयत्नों से यह प्राकृत संस्थान प्राकृत साहित्य के शिक्षण और शोध का प्रमुख केन्द्र बन रहा है।

इस अवसर पर प्राकृत रत्न की परीक्षा में स्वर्ण पदक विजेता विद्यार्थियों को श्री जी.पी. शांतराजु, मैसूरु तथा डॉ. एम.ए. जयचन्द्र, बैंगलुरु द्वारा नगद पुरस्कार प्रदान किया गया, जो आगे भी प्रतिवर्ष दिया जायेगा। राष्ट्रगीत के साथ यह दीक्षान्त समारोह सम्पन्न हुआ। समारोह का संचालन विद्यापीठ के कन्नड़ विभाग के प्रभारी डॉ. सी.पी. कुसुमा ने किया और विद्यापीठ के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री एल.एस. जीवेन्द्रकुमार ने धन्यवाद ज्ञापन किया। इस समारोह में देश के लगभग दो सौ विद्यार्थी और तीस प्राकृत के विद्वान एवं दस प्राकृत परीक्षा केन्द्रों के संयोजकों ने भी भाग लिया।

समारोह के उपरान्त प्रमुख अतिथियों और विद्वानों के साथ परमपूज्य स्वामी जी ने चर्चा की और और श्रीक्षेत्र की ओर से प्रमुख अतिथि डॉ. सलोनी जोशी का आशीर्वाद पूर्वक सम्मान किया।

डॉ. श्रीमती सरोज जैन

General Instructions and Information for Contributors

1. Arhat Vacana publishes original papers, reviews of books & essays, summaries of Dissertations and Ph.D. Thesis, reports of Meetings/Symposiums/Seminars/ Conferences etc.
2. Papers are published on the understanding that they have been neither published earlier nor have been offered to any journal for publication.
3. The manuscript (in duplicate) should be sent to the following address-
   Dr. Anupam Jain, Editor - Arhat Vacana
   'Gyan Chhaya', D-14, Sudamanagar, INDORE - 452 009,
   e-mail : anupamjain3@rediffmail.com
4. The manuscript must be typed on one side of the durable white paper, in double spacing and with wide margin. the title page should contain the title of the paper, name and full address of the author. It is prefered to submit the MSS electronically through C.D. or email in MS Word in addition to the above.
5. The author must provide a short abstract in duplicate, not exceeding 250 words, summarising and highlighting the principal findings covered in the paper.
6. Foot-notes should be indicated by superior number running sequentially through the text. All references should be given at the end of the text. The following guidelines should be strictly followed.
   (i) References to books should include author's full name, complete and unabbreviated title of the books (underlined to indicate italics), volume, edition (if necessary), publisher's name, place of publication, year of publication and page number cited. For example - Jain, Laxmi Chandra, Exact Sciences from Jaina Sources, Basic Mathematics, Vol.-1, Rajasthan Prakrit Bharati Sansthan, Jaipur, 1982, pp. XVI
   (ii) References to articles in periodicals should mention author's name, title of the article, title of the periodical, underlined volume, issue number (if required), page number and year. For example - Gupta, R.C., Mahāvīrācārya on the Perimeter and Area of Elipse, The Mathematics Education, 8 (B), PP. 17-20, 1974.
   (iii) In case of similar citations, full reference should be given in the first citation. In the succeeding citation abbreviated version of the title and author's name may be used. For example - Jain, Exact Sciences, PP. 45 etc.
7. Line sketches should be made with black ink on white board of tracing paper. Photographic prints should be glossy with strong contrast.
8. Acknowledgements, if there be, are to be placed at the end of the paper, just before reference.
9. Only ten copies of the reprints will be given free of charge to those authors, who subscribe. Additional copies, on payment, may be ordered as soon as it is accepted for publication.
10. Devanāgari words, if written in Roman Script, should be underlined and transliteration system should be adopted.

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा प्रकाशित साहित्य

क्र.	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
01	जैन धर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81-86933-00-x	अनुपलब्ध
02.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	पं. दयाचन्द गोयनीय	81-86933-01-8	1.50
03.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-02-6	1.50
04.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-03-4	3.00
05.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-04-2	4.00
06.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-05-0	4.00
07.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-06-9	4.00
08.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-07-7	7.00
09.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-08-5	6.00
10.	नैतिक शिक्षा, पांचवाँ भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-09-3	6.00
11.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-10-7	6.00
12.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-11-5	6.00
13.	The Jain Sanctuaries of the Fortress of Gwalior	Dr. T.V.G. Shastri	81-86933-12-3	अनुपलब्ध
14.	जैन धर्म - विश्व धर्म	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81-86933-13-1	12.00
15.	मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य	पं. नाथूराम शास्त्री	81-86933-14-x	70.00
16.	Jain Dharma-Vishwa Dharma	Pt. Nathuram Dongariya Jain	81-86933-15-8	20.00
17.	अमर ग्रंथालय इन्दौर में संगृहीत पांडुलिपियों की सूची	डॉ. अनुपम जैन एवं डॉ. महेन्द्र कुमार जैन	81-86933-16-6	अनुपलब्ध
18.	आचार्य कुन्दकुन्द श्रुत भंडार खजुराहो में संगृहीत पांडुलिपियों की सूची	डॉ. अनुपम जैन एवं डॉ. महेन्द्र कुमार जैन	81-86933-17-4	अनुपलब्ध
19.	म.प्र. का जैन शिल्प	श्री नरेशकुमार पाठक	81-86933-18-2	300.00
20.	भट्टारक यशकीर्ति दि. जैन सरस्वती भंडार, ऋषभदेव (केशरिया जी) में संगृहीत पांडुलिपियों की सूची	डॉ. अनुपम जैन एवं डॉ. महेन्द्र कुमार जैन	81-86933-19-0	अनुपलब्ध

21.	जैनाचार विज्ञान	मुनि सुनीलसागर	81-86933-20-4	अनुपलब्ध
22.	समीचीन सार्वधर्म सोपान	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81-86933-21-2	20.00
23.	An Introduction to Jainism and its Culture	Pt. Balbhadra Jain	81-86933-22-0	100.00
24.	Ahiṁsā : The Ultimate Winner	Dr. N.P. Jain	81-86933-23-9	अनुपलब्ध
25.	जीवन क्या है ?	डॉ. अनिल कुमार जैन	81-86933-24-7	50.00
26.	विदेशी संग्रहालयों में भारत की जैन मूर्तियाँ	श्री नरेश कुमार पाठक	81-86933-25-5	50.00
27.	Mathematical Contents of Digambara Jaina Texts of Karṇānuyoga Group, Vol.-1& Vol. - 2	Prof. L.C. Jain	81-86933-26-3 81-86933-27-1	3000.00 Per Set
28.	जैन संस्कृत साहित्य में श्री कृष्ण चरित एक अध्ययन	डॉ. संस्कृति राँवका	81-86933-28-x	अनुपलब्ध
29.	अध्यात्म से समृद्धि, स्वास्थ्य एवं शान्ति	प्रो. पारसमल अग्रवाल	81-86933-29-8	100.00
30.	तत्वदेशना	आचार्य विशुद्धसागर	81-86933-30-1	अनुपलब्ध
31.	व्यावहारिक गीता	प्रो. प्रभु नारायण मिश्र	81-86933-31-x	अनुपलब्ध
32.	निजानन्द शतकम्	आचार्य योगीन्द्रसागर	81-86933-32-8	10.00
33.	कलियुग का क्रन्दन	आचार्य योगीन्द्रसागर	81-86933-33-6	10.00
34.	अनुपम शतकम्	आचार्य योगीन्द्रसागर	81-86933-34-4	10.00
35.	संबोधन शतकम्	आचार्य योगीन्द्रसागर	81-86933-35-2	10.00
36.	स्वर्ण शतकम्	आचार्य योगीन्द्रसागर	81-86933-36-0	10.00
37.	मुक्तिकांता शतकम्	आचार्य योगीन्द्रसागर	81-86933-37-9	10.00
38.	धर्म शतकम्	आचार्य योगीन्द्रसागर	81-86933-38-7	10.00
39.	स्वरूप-संबोधन परिशीलन विमर्श (संगोष्ठी की आख्या)	आचार्य विशुद्धसागर	81-86933-39-5	स्वाध्याय
40.	समाधितंत्र अनुशीलन	आचार्य विशुद्धसागर	81-86933-40-9	अनुपलब्ध
41.	इंदौर ग्रंथावली भाग - 1	डॉ. अनुपम जैन एवं ब्र. अनिल जैन शास्त्री	प्रकाशनाधीन	

नोट : पूर्व के सभी सूची पत्र रद्द किये जाते हैं। मूल्य परिवर्तनीय हैं।

प्राप्ति सम्पर्क : प्रबन्धक-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001

माह जुलाई-सितम्बर 2011 में प्रकाशित लेख ''तीर्थों के पीछे क्या है'' में लेखक द्वारा पृष्ठ 41 पर भगवान श्री आदिनाथजी का काल निर्धारण 20 लाख वर्ष पूर्व तथा पृष्ठ 40 पर भगवान श्री अजितनाथ जी का काल निर्धारण 10 लाख वर्ष पूर्व निर्धारण किया गया है। साथ ही पृष्ठ 37 पर 20 लाख और 10 लाख के आकड़ों को कल्पित नहीं वरन् वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित बताया है। जबकि जैन शास्त्रों में भगवान श्री आदिनाथ जी की आयु ही 84 लाख पूर्व तथा भगवान श्री अजितनाथजी की आयु ही 72 लाख पूर्व बताई गई है। इसी तरह अन्य तीर्थंकरों की आयु भी इसी प्रकार होने से लेखक के आकड़ें जैन शास्त्रों के काल वर्णन को झुठलाते हैं। बेहतर होता लेखक अपने लेख में 20 लाख वर्ष पूर्व या 10 लाख वर्ष पूर्व से अधिक ही बतला देते।

इंजी. आजाद कुमार शाह,
42, मनभावन नगर, कनाड़िया रोड़,
इन्दौर

I felt to be obliged with the Library as well as Dr. Anupamji Jain on visiting the Institution.

Devendra Doliya

21.07.2011

सारा साहित्य जो संभव हो सकता है एक जगह पर रखे जाना, उसे देखकर व उसके बारे में जानकर अत्यधिक सुखद् अनुभूति हो रही है..... साधुवाद व शुभाशीष इस स्तुत्य व प्रबुद्ध वर्ग की प्यास बुझाने वाले अनुकरणीय कार्य की। अल्प समय रूककर ही बहुत अच्छा लगा.....

14.10.11 **मुनि अनुज सागर**

ICTM - 2012

Third Internation Conference on Indian Civilisation through the Nillennia Jambudvipa-Hastinapur, 2-3 March 2012 last date for submission of papers - 31.12.2011.

For more details and Information Broucher Contact to :

Prof. S.C. Agrawal
Convenor - ICTM 2012
Director SBAS
Shobhit University
NH-58, Modipuram Meerut - 250110
email : ictm.shobhituniversity@gmail.com

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर - शोध समिति (निदेशक मण्डल)

2010 एवं 2011

अध्यक्ष
प्रो. ए.ए. अब्बासी
पूर्व कुलपति एवं मानद निदेशक,
IDA Plot No 80 EB,
स्कीम नं. 94, बॉम्बे हॉस्पिटल के पास, इन्दौर
0731-4041595

सदस्य सचिव
प्रो. अनुपम जैन
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष-गणित,
शास. होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय
ज्ञानछाया, डी-14, सुदामा नगर, इन्दौर
0731-2797790, 094250-53822

सदस्य

प्रो. बिमलकुमार जैन (पूर्व संकायाध्यक्ष वाणिज्य-डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि.)
एल.आई.जी-52, पद्माकर नगर, मकरोनिया-**सागर**
प्रो. गणेश कावड़िया (अध्यक्ष - अर्थशास्त्र विभाग, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय)
ए-3, प्राध्यापक निवास, देवी अहिल्या वि.वि. खंडवा रोड़, **इन्दौर**
प्रो. नलिन के. शास्त्री (प्राध्यापक-वन.शा. एवं डीन-महा. विकास परिषद)
ए-11, प्राध्यापक निवास, मगध वि.वि. परिसर, **बोधगया, (बिहार)**
प्रो. नरेन्द्र धाकड़ (अतिरिक्त संचालक-उच्च शिक्षा, इन्दौर-उज्जैन संभाग)
296, तिलक नगर, **इन्दौर**
प्रो. पारसमल अग्रवाल (पूर्व प्राध्यापक - भौतिकी)
11, भैरवधाम कॉलोनी, सेक्टर-3, हिरणमगरी, **उदयपुर, (राज.)**
प्रो. प्रभुनारायण मिश्र (प्राध्यापक प्रबन्ध विज्ञान एवं पूर्व निदेशक)
पी-2, प्राध्यापक निवास, खंडवा रोड़, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, **इन्दौर**
डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन (सेवानिवृत्त व्याख्याता–हिन्दी)
91/1, गली नं. 3, तिलक नगर, **इन्दौर**
प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल (निदेशक-शुद्ध एवं प्रयुक्त विज्ञान संस्थान, शोभित वि.वि., मेरठ)
एफ-4, तरुकुंज, तेजगढ़ी, गढ़ रोड़, **मेरठ (उ.प्र.)**

महावीर ट्रस्ट-म.प्र. का मुखपत्र
सन्मति वाणी

सम्पादक : श्री जयसेन जैन
परामर्श सम्पादक : डॉ. प्रकाशचन्द जैन एवं
डॉ. अनुपम जैन
सह सम्पादक : डॉ. सुशीला सालगिया
आजीवन शुल्क : रु. 1000=00
प्रकाशक : श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल, अध्यक्ष
महावीर ट्रस्ट, 63 महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर-452001

भगवान महावीर कीर्तिस्तंभ का लोकार्पण

महावीर ट्रस्ट, इंदौर द्वारा निर्मित, राजस्थान के गुलाबी पत्थरों से उकेरी गई, चित्तौड़गढ़ कीर्तिस्तंभ की प्रतिकृति, भगवान महावीर कीर्तिस्तंभ का लोकार्पण एवं ट्रस्ट गतिविधियों के लिये निर्मित होने वाले भवन का भूमि पूजन मध्य प्रदेश शासन के आवास एवं पर्यावरण मंत्री श्री जयंतजी मलैया द्वारा किया गया। इस अवसर पर महावीर ट्रस्ट द्वारा 11 विकलांगों को कृत्रिम पैर भेंट किये गए। मंत्री श्री मलैया ने कहा कि महावीर ट्रस्ट वर्षों से परमार्थ के कार्यों में संलग्न होकर अपनी एक विशिष्ट छवि इंदौर ही नहीं पूरे प्रदेश में बनाए हुए हैं। महावीर ट्रस्ट द्वारा निर्मित यह कीर्तिस्तंभ बहुत सुंदर बनकर ऐतिहासिक धरोहर के रूप में इंदौर में विद्यमान हो गया है।

ट्रस्ट अध्यक्ष श्री प्रदीप कासलीवाल ने अतिथियों का स्वागत् करते हुए ट्रस्ट द्वारा किये गए विस्तृत कार्यों की जानकारी प्रदान की। महावीर विकलांग सेवा योजना के संयोजक डॉ. देव पाटोदी ने स्वास्थ्य योजना की जानकारी दी। उन्होंने बताया कि ट्रस्ट द्वारा अभी तक 8300 कृत्रिम पैर, 3400 ट्राईसाइकिल, कैलीपर्स आदि अनेक उपकरण विकलांगों को निःशुल्क प्रदन किए गये हैं। ट्रस्ट के महामंत्री श्री जयसेन जैन ने सन्मतिवाणी पत्रिका की जानकारी प्रदान की। महावीर ट्रस्ट द्वारा कीर्तिस्तंभ एवं ट्रस्ट जानकारी के फोल्डर का विमोचन डॉ. प्रकाशचंद जैन एवं प्रबंधक ललित राठौर ने करवाया।

कार्यक्रम में ट्रस्ट के ट्रस्टी श्री विजयजी मलैया, पद्मश्री बाबूलालजी पाटोदी, डॉ. प्रकाशचंद्र जैन, एवं श्री जयसेन जैन को उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया। इस अवसर पर भाजपा नगर अध्यक्ष श्री शंकर ललवानी, पूर्व मंत्री श्री ललित जैन, श्री सुरेश मिंडा, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अध्यक्ष डॉ. अजित कासलीवाल, सचिव डॉ. अनुपम जैन एवं अनेक समाजजन उपस्थित थे।

कार्यक्रम का संचालन श्री प्रदीप चौधरी ने किया एवं आभार डॉ. प्रकाशचंद जैन ने माना।

लोकार्पण के शिलालेख के साथ मुख्य अतिथि, ट्रस्टी एवं अध्यक्ष

1000 वर्ष प्राचीन मूर्ति, अब कपड़े धोने का पत्थर

दशकों से महिलायें पुराने ममल्लापुरम् रोड पर स्थित पादूर में मंदिर टैंक के पास एक पत्थर का प्रयोग कपड़े धोने के लिए करती थीं। एक रविवार को गांव के बुजुर्गों और पंचायत अधिकारी को टैंक की मरम्मत करते समय पता चला कि यह दुर्लभ जैन मूर्ति 1000 वर्ष से अधिक पुरानी है। अब वही महिलायें उस कपड़े धोने के पत्थर की पूजा करती हैं और उस पर फूल चढ़ाती हैं।

पंचायत अधिकरी ने टंकी के पास झाड़ियों को साफ करने के लिए पत्थर की खुदाई की थी। उन्होंने महसूस किया कि जो पत्थर महिलाएं कपड़े धोने के लिए इस्तेमाल कर रही थी वह मूर्ति का पीछे वाला भाग था और सामने का भाग कुछ फीट तक दफनाया गया था। हम समझ रहे थे कि मूर्ति खो गई है। पादूर पंचायत के अध्यक्ष टी. परमशिवम् ने कहा कि हम इसे पाकर बहुत खुश हैं।

मूर्ति 24वें जैन तीर्थंकर भगवान महावीर की है। तीर्थंकर को ध्यान मुद्रा में दर्शाया गया है और उसके पीछे चंवर धारी हैं। मूर्तिकला के सिर पर एक अशोक वृक्ष है और दोनों तरफ फूल ले जाने के लिए सेवक खड़े हैं। पुरातत्वविदों के अनुसार सिर के ऊपर तीन छत्र की उपस्थिति स्पष्ट संकेत है कि मूर्ति जैन तीर्थंकर की है।

एग्मोर में सरकारी संग्रहालय ने मूर्ति, जो थोड़ा क्षतिग्रस्त है, पुनः ठीक करने का प्रस्ताव किया है लेकिन ग्रामीणों ने कहा है कि उनकी इसके लिए एक मंदिर के निर्माण की योजना है। अतः मूर्ति ग्राम में ही विराजित की जाये। पुरातत्वविदों ने कहा कि चैन्नई और आस-पास के जिले जैसे कांचीपुरम् 10वीं सदी ई. तक जैन धर्म के महत्वपूर्ण केन्द्र थे विशेष रूप से चोल अवधि के दौरान थे।

श्री सतीश जैन (AIR) दिल्ली
द्वारा टाईम्स ऑफ इंडिया 1.9.11 में प्रकाशित समाचार के आधार पर प्रस्तुत